महाश्वेता देवी
की कहानियाँ

बंगला से अनुवाद
प्रमोदकुमार सिन्हा

पहला हिन्दी संस्करण
1984

मूल्य
25 रुपये

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38, अंसारी रोड, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002

मुद्रक
ग्रन्थशिल्पी, पंचशील गार्डन
शाहदरा, दिल्ली-110032

अरघान (कविता संग्रह : 1984)
-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

अरघान (कविता संग्रह : 1984)

50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

अरघान (कविता संग्रह : 1984)
1-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

पाँकाल

सुदाम मंडल कभी यह सोच भी नहीं सकता था कि सिनेमा-हॉल में घुसते ही उसे जीवन-दर्शन प्राप्त हो जायेगा। यह आज की बात नहीं है। दसेक साल पहले की बात है। पूस के महीने में हरिरामपुर के खेतिहरों की जेब में कुछ पैसे होते हैं, घर में कुछ धान।

उस समय हाबू पाल बाबू का बेटा सात दिन तक सिनेमा दिखाता है—धार्मिक, सामाजिक और पौराणिक सिनेमा।

हाबू पाल बड़े धार्मिक हैं। हरिरामपुर के वट-तले में प्रतिवर्ष चैत महीने में जो मेला लगता है, वह मेला उन्हीं का शुरू किया हुआ है। वहाँ एक बोर्ड पर लिखा है—

गौर प्रेम रसार्णव में,
जो डूब गया है।

उन हाबूचन्द्र पाल—पिता सुराजमोहन पाल, निवास हरिरामपुर कर्तृक—द्वारा इस वट-तले का निर्माण सात सौ इक्कीस रुपये बारह आने में सम्पन्न हुआ था।

यह गौर नदिया के गौरांग अवतार हैं या हाबू के ससुर हरिपाल, यह पता चलाना मुश्किल है। हाबू की पत्नी गौरहरि की एकमात्र संतान है। फलतः ससुर के प्रति हाबू की प्रीति अत्यधिक है।

सुदाम मंडल ही हाबू को बुद्धि देता है, "बाबू! सपने में भगवान का विग्रह पाकर यदि आप वट-तले मे प्रतिष्ठित करें तो आपका कार-बार बढ़ेगा।" सुदाम की बुद्धि पर हाबू पाल हँस दिया, "रे बेटा! तेरी भरम गयी है। सपने में क्या भगवान जब चाहे चले आते हैं?"

"क्यों बाबू, सपने नहीं देखते ?"

"धत् बाबू ! तकिए पर सर रखते ही सो जाता हूँ, सपने देखूँ कब ? समय मिलता है ?"

"उपवास रखने पर सपने दिखते हैं।"

"वह नहीं कर सकता।"

सुदाम ने ठंडी साँस भरी। हाबू पाल क्या खाता है, यह सुदाम ने कभी नहीं देखा। सुना-भर है, रात को हाबू पाल खीर में पूड़ी डुबो कर खाता है।

एक दिन हाबू पाल ने जैसे सुदाम की इच्छा पूरी करनी चाही। एक दिन वह गद्दी पर बैठे-बैठे कटहल खाते समय अचेत हो गया, आँखें उलट गयीं। रास्ते में से एक लॉरी पकड़ कर लायी गयी और उसे अस्पताल पहुँ-चाया गया। डॉक्टरों ने कहा कि अत्यधिक रक्त-चाप है। खाना-पीना कम कीजिए। रोज़ कुछ दूर पैदल चलें।

हाबू की पत्नी घूँघट की आड़ से सिसकियाँ भरते हुए बोली, "खाना कहाँ ? चिड़िया जैसा तो खाते हैं। अब उसे भी कम कर दें तो क्या आदमी बचेगा ?"

"ठीक है। पक्षी का आहार ?"

"और नहीं क्या ?"

"सवेरे से शाम तक क्या-क्या खाते हैं ?"

"चाय का शौक नहीं। सवेरे दूध-मूढ़ी, उसके बाद गरम भात, दोपहर को भात और शाम को सब्ज़ी-भाजी। रात को खीर-पूड़ी।"

"पर यहाँ जब आये थे तो मुँह पर कटहल चिपटा था।"

"अब ये लो, कटहल-आम का खाना भी क्या खाना हुआ ! फल के मौसम में फल नहीं खायेंगे ?"

हाबू का सुपुत्र सात्यकि तभी उठा और उसने माँ को धमकाया, "क्या बेकार की बात कर रही हो ? मुझे भी कहने दोगी या नहीं ?"

"तुम बोलोगे ? बोलो।"

"तुम जाकर बाहर बैठो। तुम आयीं ही क्यों ? तुम्हें कितना समझाया कि घर में ही रहो !"

"मेरी नैया को यमराज डुबाना चाहता है। मैं साथ न आऊँ क्या !"

"अब बाहर जाकर बैठो।"

"जाती हूँ।"

"सारी चीज़ें सम्हाल लो।"

"कहने की ज़रूरत नहीं है।"

सात्यकि ने माँ को बाहर बैठा दिया। उसका बदन क्रोध से जल उठा। बाप के अचेत होते-न होते माँ ने चाभी अपने कब्ज़े में कर ली। किसका विश्वास ? सात्यकि ? सात लड़कियाँ हैं तुम्हारी। एक लड़का। उस पर भी अविश्वास ?

जैसा बाप वैसी माँ। उसके जैसे सुयोग्य बेटे पर अविश्वास करना महापाप है। इसी पाप के कारण बाप अचेत हुए हैं, सात्यकि को इसमें सन्देह नहीं। बाप अब लग जायें तो ही सात्यकि बचेगा।

"डाक्टर बाबू ! कैसा लगता है ?"

सात्यकि ने बड़ी आशा से सवाल पूछा। अगर डाक्टर कह दे कि बापू नहीं बचेगा तो सात्यकि बड़े आराम से शहर जायेगा और शैलो-पम्प इत्यादि का व्यवसाय शुरू करेगा। बाप के रहते यह संभव नहीं। बाप तो यहीं सड़ेगा। जिस-तिस के नाम पर ज़मीन रखो और खेती करो, यह क्या बात हुई !

बापू तो बस ज़मीन को जानता है। और जानता है भगवान को। क्यों ? गाँव वालों ने तुम्हें ऐसा क्या सम्मान दिया कि तुम बट-तला बाँधने गये ? किसी ने प्रशंसा नहीं की। नवीन कुंडू ने तो मज़ाक उड़ाया था—'अरे, बड़ी बुद्धि पायी है। युवक-युवतियाँ बैठेंगे, हँसी-मज़ाक करेंगे तभी तो वट-तला सार्थक होगा ! अपने जैसा ही तमाम दुनिया को समझता है।'

सात्यकि की बड़ी इच्छा है कि उसका बाप मर जाये। डाक्टर से पूछता है वह यही आशा लेकर। जिनकी ज़मीन-जायदाद होती है, उनके चेहरे सीधे-सादे, सुंदर, ज्ञानी, शैतानी, भोले-भाले, बेवकूफ़ जैसे होते हैं। चेहरे बहुत तरह के हो सकते हैं। पर प्रत्येक पर लक्षित होने वाली

मानसिक प्रतिक्रिया बड़ी जटिल होती है।

डाक्टर को इतनी बातें समझ नहीं आतीं। उसने सात्यकि की उत्तेजना को पिता के प्रति संतान का प्रेम समझा।

सात्यकि ने फिर पूछा, "माँ को हटा दिया है, मुझे बता दीजिये। वह सुनकर ही मर जायेगी। उसके बाद मेरी बहनें आयेंगी और रो-रो कर गहा-बमचिक मचायेंगी।"

डाक्टर ने समझा, संतान पिता के लिए व्याकुल है। अहा! गाँव के लोग अब भी कितने सच्चे हैं। यह डाक्टर अभी-अभी आया है गाँव में। अभी भी सात्यकि या हाबू से उसका कोई विशेष परिचय नहीं है।

उसने कहा, "हम यथासाध्य कोशिश कर रहे हैं। लगता है, इस बार बच जायेंगे, बशर्ते फिर से अटैक न हो। लेकिन बाक़ी उम्र बड़ी सावधानी से रहना पड़ेगा। जो मैंने खाने की फ़ेहरिस्त सुनी है, उसी के अनुसार खाने पर बचने की कोई संभावना नहीं।"

सात्यकि बेवकूफ़ों की तरह सुनता रहा। मन-ही-मन हिसाब लगाता रहा—इस बार बच जायेंगे। पर हार्ट की बीमारी है। मछली, काछिन, पूड़ी, कटहल खाने पर फिर बिछौना पकड़ लेंगे, मर भी सकते हैं।

ठीक है। बाप का मरना अब सात्यकि के हाथ में है। उसने ठंडी साँस ली। बोला, "माँ को ले जाता हूँ। छोड़ आऊँ। यहाँ भीड़ करने पर आपको असुविधा होगी।"

"हाँ भाई, ले जाइये।"

सात्यकि यह भी समझ रहा था कि इस समय उसे एक पितृभक्त पुत्र के रूप में भी प्रतिष्ठित होना है। सात बहनों में तीन साथ ही रहती हैं। मँझली की सास उसकी माँ को वश में किये रहती है और हमेशा बुलाकर रौलेक्स की ताँत की बनारसी साड़ी देती है। उसने माँ को समझाया है कि सात्यकि की बहू तो परायी है, लड़कियाँ ही अपनी हैं। इसलिए सात्यकि को ही बाप का समस्त धन मिलेगा। उसका हक़ है। सात्यकि की माँ, बाप के पास से जितना खींच सकती है, खींचकर अपनी बेटियों को देती रहती है।

सात्यकि का बाप भी कच्चा आदमी नहीं है। उसने अपनी सात बेटियों

की शादी सात गुंडे-जोतदारों से की है। शादी से पहले उसने 'यहाँ सही कर दे, वेटी' कहकर एक कोरे कागज़ पर उनके सही ले लिये थे। उस कागज़ के बयान से यही लगता था कि पुत्रियों ने स्वेच्छा से अपना हिस्सा छोड़ दिया है।

वह तो ठीक है।

लेकिन सब वे-ठीक भी तो हो सकता है।

माँ बात-बात में कह देती है, "तुम्हारा जो है उसमें लड़कियाँ दावा नहीं करेंगी। पर जो मेरा है, वह क्यों लिखवाया है ?"

सात्यकि समझता है। माँ को किसी तरह हटाना ही होगा। उसने माँ से कहा, "यहाँ बैठे रहने से कोई लाभ नहीं है। चलो, तुम्हें छोड़ आऊँ।"

"मैं नहीं जाऊँगी।"

"अभी बापू की तवीयत ख़राब है। तुम अगर वहाँ जाकर नहीं सम्हालोगी तो गुमाश्ते सब गड़बड़ कर देंगे।"

"अव क्या होगा ?"

"तुम्हें छोड़कर मैं आ जाऊँगा। घर चलो। पूजा की व्यवस्था करो। अगर मैंने तुम्हारा दूध पीया है तो मैं बापू को लौटा लाऊँगा।"

"तो चल। रास्ते में मन्दिर से होकर चलूँगी। भगवान के दरवाज़े पर चूड़ियाँ और सिन्दूर रख जाऊँगी। बड़ी जाग्रत काली हैं। चूड़ियों को कभी अस्वीकार नहीं करतीं।"

"यह तो ज्ञानियों की बात हुई !

"तो चल अब।"

सात्यकि माँ को घर ले गया। पत्नी से बोला, "माँ जो कहें सुनना।"

पत्नी की बुद्धि वड़ी तेज़ है। उसने सर झुकाया और तेज़ी से पूजा-पाठ के सार-संजाम में लग गयी। तमाम गाँव धन्य-धन्य कह उठा। हावू की पत्नी ने डबडबायी आँखों से कहा, "जो कहते थे वहू दूसरे की जायी है, वे अब अपनी आँखों से देख जायें। सातू का वाप घर लौटेगा, गद्दी पर बैठेगा। सब बहू के पुण्य का ज़ोर है।"

खाना जुट गया !"

"मेहनत करके नहीं खा सकते ?

"काम कौन देगा ? हाबू ही ना ?"

"ठीक है, कितने दिन ? फिर बाँट डलेंगे, तब पता चलेगा।"

"ठीक है, तब मैं तुम्हारी चिड़िया बन जाऊँगा।"

"तुम्हारे साथ बात करना भी...।"

"बाबू को देखा, लकड़ी होकर लौटा है।"

"फिर फूल जायेगा।"

सुदाम मजा लेता हुआ हँसा। कूदता हुआ बोला, "वह सपने की बात है।"

"क्यों ?"

"अब और नहीं खा पायेगा। दस जनों का खाना अकेला खाता था। डाक्टर ने कहा है कि खाना बन्द। अच्छा हुआ ! अब सूख कर ही मरे।"

"क्या ? खाना बंद !"

"सऽऽ—ब बंद !"

"ओह ! यदि मेरे पास पैसे होते तो...एक जोड़ी मछली अब ही हाबू को दे आता।"

"तुम्हारे पास तो पैसे नहीं हैं।"

"यह जान कर भी तुम बैठे हो।"

"पर तुम आदमी अच्छे हो।"

"हाँ, तुम्हारे जैसा चालाक नहीं हूँ। वह पोटली में क्या है ? केले हैं ?"

"हाँ दादा, मालकिन ने दिये हैं।"

"खुद केले खाते हो। क्या घर पर तुम्हारी पुत्री-पत्नी भी खाते हैं ?"

"दादा, जो जिसका भाग्य ! उनके भाग्य में होता तो वे भी खाते।"

"छिः-छिः सुदाम ! हमेशा ऐसे ही रहोगे। पत्नी-बच्ची कभी चावल बीनते हैं, कभी गेहूँ-धान-कुन्नी बटोरते हैं। लड़का स्टेशन की दुकान के

आगे भीख माँगता है। उनकी देख-भाल करना क्या तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है ? वे कहाँ से खायेंगे ?"

"वह बात दूसरी है।"

"समझा !"

नवीन कुंडू गुस्से में चला गया। सुदाम ने केले खा लिये और फिर वट-तला के चबूतरे पर सो रहा। पत्नी और पुत्री तीन बजे तक लौटेंगे, तभी खाना पकेगा। घर लौटने में तभी लाभ है। अभी कोई फ़ायदा नहीं।

सुदाम गहरी नींद सो गया। सपने में आज उसने खीर में डुबोकर पूड़ी खायी।

हावू की बीमारी के कारण ही सुदाम के मन की इच्छा-पूर्ति सम्भव हुई।

भगवान की मनोगति समझना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। सुदाम ने एक दिन कहा था, "बावू ! सपने में भगवान पाकर यदि वट-तला में प्रतिष्ठित करते तो कुछ काम की वात होती।"

हावू पाल सुदाम की सरलता पर हँस-भर दिया था। पहले तो भगवान किसी की वात मानकर सपने में आते नहीं। पाँच हज़ार से कम मासिक आय वालों के पास तो वे फटकते भी नहीं। फिर सिर्फ़ पाँच हज़ार पास मे होने से भी कुछ नहीं होने वाला है। पैसा काला धन होना चाहिए। क्योंकि जिसके पास सफ़ेद रुपये होंगे, वह झट से भगवान को प्रतिष्ठित करने, उनकी पूजा करने, उनके सामने भक्त जुटाने इत्यादि का काम नहीं कर पायेगा।

हावू एक हिसाब से योग्य व्यक्ति था। उसे दर्शन देकर फ़ायदा होता।

लेकिन सपना तो हावू देखता ही नहीं। सारे दिन तिजारत और ज़मीन का हिसाब करते-करते वह बेदम हो जाता था। फिर बिस्तरे पर पड़ते ही गहरी नींद। सपने देखने का समय हावू को कभी मिला नहीं।

लेकिन बीमारी के बाद मृत्यु-भय से हावू बड़ा कातर हो गया। माँड़-भात, कम तेल-घी का भोजन, रात को धान का लावा व दूध। हावू बड़ा

दुखी हो गया।

"यह क्या किया, माँ ?" वह चिल्लाया।

उसकी पत्नी सात्यकि से कहती, "माँ-माँ क्यों करते हैं रे? कोई भगवान देखते हैं!"

"व्यवधान न दो। सोने दो।"

हावू की पत्नी इस प्रश्न से बड़ी परेशान है। हावू वैष्णव है। गौरहरि उसके देवता हैं। जिन्होंने गुरु-दीक्षा दी, उन्होंने कहा था, "युग-धर्म मानना होगा। मछली खाओ। प्याज़-लहसुन मत खाना। मांस में कोई दोष नहीं।"

हावू मांस रोज़ खाता था।

तब भी, गौरहरि ही उसके देवता हैं। फिर उन्हें न बुलाकर 'माँ, माँ' क्यों चिल्ला रहा है हावू ?

बाद में हावू के ससुर, गौरहरि पाल, जिन्हें सिविल पाल के नाम से जाना जाता है, आये। जीवन-भर सैकड़ों सिविल केस के मामले दायर करके उन्होंने उक्त नाम अर्जन किया है। लोग कहते हैं कि अपने बाप पर केस दायर किया था। बाप मर गये सो इच्छा पूर्ण नहीं हुई।

मामला दायर करके ही वह खुश रहते हैं। इसी कारण उन्हें डायमंड हारबर में घर बनाना पड़ा है। डायमंड हारबर से कलकत्ता आने-जाने में सुविधा होती है।

जमाई हावू पाल से उन्हें एक ही प्रधान कष्ट है। वह मर्द नहीं है। इस जीवन में कभी मामला-मुक़द्दमा किया ही नहीं। इसमें क्या आनन्द है, यह हावू कभी जान नहीं पाया—इससे उन्हें दुख है।

गौरहरि पाल बड़े ज्ञानी व विवेचनाशील समझे जाते हैं। हावू हमेशा 'माँ-माँ' चिल्लाता है, यह जान कर वे आये व अपनी पचास-वर्षीय गिन्नी बेटी के सर पर हाथ फेरते हुए बोले, "बेटी ! यह एक बड़ा सुसमय है। मुझे लगता है, उसका अमृतयोग आ गया है। ओह ! यदि इस समय हावू दस मुक़द्दमे दायर करे तो वह दसों में जीत जायेगा। पर यह तो उसके भाग्य में नहीं है।"

"नहीं, पिताजी ! वे मुक़द्दमेबाज़ी से डरते हैं।"

"वही तो गड़बड़ी है। जाने दे, मुकुन्दमियाजी का गुण तुम्हें नहीं मिला।"

"नहीं, पिताजी!"

"लेकिन मुझे लगता है कि कोई भगवती हाबू को ढूँढती है। वह 'माँ' चिल्लाता है, इसी कारण।"

"यह क्या बात है?" गौरहरि तो है ही। उस दिन उन्हें सोने का नूपुर दिया गया। चाँदी के गमले में पर्याप्त भोग भी चढ़ाया गया।"

"भगवानों के सामने क्या हम समझेंगे?"

"अगर लड़के-लड़की भगवान को समझें तो वह शक्ति-पूजा होगी! यह तो वैष्णवों का घर है।"

"यह हम-तुम नहीं समझेंगे।"

"नीम-तले चूड़ियाँ व सिंदूर रख आयी थी। माँ ने रूठी-रूठी लौटा दिया। इसमें क्या दोष हुआ?"

गौरहरि को ठाठ से भोग चढ़ा।

ढेरों पूड़ियाँ, कड़ाह भर के खीर और परात भर के बूंदी चढ़ायी गयी। हाबू हाथ जोड़े बैठा रहा। इतना सारा भोग देखकर उसे अपने पतले दूध और मूढ़ी की याद आयी। मन के आवेग और दुख को वह संयत नहीं रख पाया। बोला, "यह क्या किया, माँ?" सब डर गये। यह कौन-सी देवलीला है? देखा, गौर हरि और नित्यानन्द महाप्रभु हाथ उठाकर खड़े हैं।

यदुराय, सतीश मंडल, उद्धव सरदार—कितने ही लोगों की मिन्नतें, टिकुली, नथ, अँगूठी, नूपुर सभी को गलाकर तुमने नूपुर गढ़ाया। ये दोनों ही बच्चे हैं, यह भी तुम जानते हो।

तब 'माँ' कहकर रोते क्यों हो?

रोते-रोते हाबू उठ गया। दूध-लावा को ठोकर मार कर वह लेट गया।

पहले वह सपने नहीं देखता था।

अब तो नींद ही नहीं आती। नींद न आने पर सपने भी आते हैं। जितनी खीर खायी, जितनी पूड़ियाँ खायी-अनखायी, जितनी मछलियाँ पोखर में हैं—सब सपने में आती हैं।

ऐसी ही एक सपनों-भरी रात में सहसा हाबू विकट स्वर में चिल्लाया और रोते हुए उसने सभी को जगाया।

"क्यों, क्या हुआ ?"

"अरे, सातू की माँ, यहाँ आओ।"

"क्या हुआ, क्या कह रहे हो ?"

"सपने में माँ आयी थी।"

"माँ ?"

"माँ शीतला। गधे की पीठ पर सवार। सोने का अंकुश हाथ में लिये। बोली—क्या है रे हाबू ! मेरी प्रतिष्ठा कर दे।"

"साफ़ देखा ?"

"जिस तरह तुम्हें देख रहा हूँ।"

सब स्तम्भित रह गये। सात्यकि की पत्नी ने मैदान मार लिया। उसने कनखियों से सात्यकि को देखते हुए इशारा किया और खुद आगे को झुक गयी। "जय माँ !" कहकर उसने प्रणाम किया।

सात्यकि बोला, "इस बार सब-कुछ शीतला के नाम कर देना होगा। यह सरकार रहेगी नहीं। दूसरी सरकार आने पर हमारी ज़मीन छीन लेगी।"

हाबू दुखी मन से बोला, "यह बातें सपने में भी आयी थीं। पर अभी संपत्ति की बातें रहने दे। सुदाम का बुलाओ।"

"क्यों, बापू ?"

"सब जान गया हूँ। उसने मुझसे कहा था, बाबू ! सपने में यदि भगवान दीखें तो कुछ काम की बात होगी !"

"वह बड़ा धूर्त है।"

"नहीं सातू, जो भगवाव की बातें पहले से जाने, वह कभी बदमाश नहीं हो सकता।

"ठीक है, बुलाता हूँ।"

"शीतला की प्रतिष्ठा करने की व्यवस्था कर दूंगा। उसकी भी व्यवस्था करनी होगी। अपनी ज़मीन जिसने रखी, वह फिर नहीं छुड़ा पाया। सुदाम ने भी ज़मीन रखी, वह भी नहीं छुड़ा पाया। अब पेट की ज्वाला

से मर रहा है।"

"ऐसे तो कई और भी हैं, बापू !"

"जानता हूँ। मेरे पास बंधक रख गये हैं, छुड़ा नहीं पाये। ऐसे लोग बहुत हैं इन आठ-दस गाँवों में।"

"इसी कारण नवीन कुंडू क्रोधित है।"

"अरे, वह तो होगा ही। लाल झंडा उठाता है न ! उसके साथ भी संबंध अच्छे बनाकर रखने होंगे। इस बार के वोट में वे ही जीतेंगे। जल में रह कर मगर से वैर अच्छा नहीं।"

"जब ऐसा होगा, तब देखा जायेगा।"

"देख ! इतने लोगों की ज़मीनें हमारे पास है। पर सुदाम को छोड़कर हमारा ख़ास कौन है ?"

"यह तो सच है।"

"तब उसको देखना ही होगा ?"

"निश्चय ही।"

तभी हाबू की पत्नी बोली, "देख सातू ! तेरा बाप दया की मूर्ति है। कितना बड़ा मन है इसका !"

दैवी माया से प्रभावित हाबू मधुर हँसी हँसता हुआ बोला, "यह काम तो करना ही होगा, नहीं तो उस लोक में क्या जवाब दूंगा ?"

सात्यकि के मन में दूसरा खेल चल रहा था। उसकी चार संतानें हैं। मुकुल रानी को कोंचते हुए बोला, "अब मैं चला, बापू !"

सात्यकि पाँचवीं संतान की तैयारी करने चला गया। मुकुल भी पीछे-पीछे चली।

दूसरे दिन हाबू ने सुदाम को बुलाया।

"मिल गया रे, मिल गया !"

"क्या मिला, बाबू ?"

"जिसे महा-सम्पदा कहते हैं।"

"आपके पास तो सब-कुछ है।"

"अरे ! जिसे कहते हैं महा-सम्पदा !"

"क्या बाबू ? मिनी बस का परमिट !"

"दुर-दुर ! मिनी बस का परमिट, हाबू पाल जब चाहेगा मिल जायेगा। वह क्या महा-सम्पदा है ?"

"तब क्या ?"

सुदाम के घर में कुहराम है। राधी की माँ राईमणि एक बारगी ही बैठ गयी है।

"खाने का इन्तज़ाम करना होगा। भात तुम खाओगे। कैसे आदमी हो तुम ! तुम प्रेम से पेट भरोगे और पत्नी-पुत्र-पुत्री खाना जुटाकर तुम्हें खिलाएँगे।"

सुदाम को बड़ी चोट पहुँची। "क्यों, इसमें क्या है ? मैं रोज़गार करता तो तुम खाते। अब तुम लाते हो तो मैं खाता हूँ। इसमें दोष क्या है ? इतनी गरम क्यों होती हो, राधी की माँ ?"

"ठीक है। पति खाना देता है, पत्नी खाती है। बाप देता है, संतान खाती है। जवान क्या ऐसे ही बैठकर खायेंगे ?"

"तब क्या खड़े होकर खायें ?"

"मज़ाक की बात नहीं, दुख की बात है।"

माँ के पीछे राधी, रानी और राजू खड़े थे। तभी तो इसकी इतनी बोली फूट रही है। सुदाम ने कहा था, "ठीक है, भात न देना हो तो मत दो। लेकिन यह जान लेना कि यह अधर्म होगा।"

"तुम क्या कुछ नहीं समझोगे ? जो मन में आये, वही करते रहोगे ? लड़कियों की शादी करनी है। सब तो उड़ा दिया। कुछ तो सोचो। एक लड़का है, उसे क्या नहीं देखना है ?"

"एक क्या, पाँच होते तो भी चलता। तूने जाकर क्यों ऑपरेशन कराया ?"

"तुमने नहीं कराया, इसी कारण मैंने कराया। तुम मरो ! सात हुए, उसमें से तीन हैं। कीड़े-मकोड़ों की तरह भूखे मर गये सब ! अब भी और लड़कों का बाप बनने की साध है ?"

"सुनो, जो पैदा करता है...।"

"खाना वही देता है। नहीं देता ! जब हाबू पाल के घर पैदा होता है तो मिलता है खाना। हमारे घर में नहीं ! अब चुप रहो।"

सुदाम कहना चाहता था कि भगवान किसे भोजन देता है, किसे नहीं—यह विचार करना सुदाम और राईमणि का काम नहीं है। उनका कर्त्तव्य है बच्चे पैदा करना। हाबू पालों की संख्या कम है। सुदाम उससे अपनी तुलना नहीं कर सकता। सुदाम का कर्त्तव्य है कि वह संतानोत्पत्ति करके धरती को भर दे। कुछ मरें, कुछ जीयें। पर भूखे-नंगों की अक्षौहिणी सेना से पृथ्वी को भर देना है।

लेकिन सुदाम ने कुछ कहा नहीं। राईमणि ने कहा, "यदि रोज़ आधा किलो चावल की व्यवस्था कर सकते हो तो खाना पाओगे। नहीं तो, खाना नहीं। हम गुंडों की जूतियाँ खायें, पुलिस के डंडे खायें, महाजन की बोली सुनें। इतना करके चावल बेचें और ये बैठकर खायें!"

राजू, सुदाम का पिडज, ज़हरीली हँसी हँसता हुआ बोला, "वह क्यों? पाँठी बकरी, गाय पकड़कर ये बाड़े में दे देते हैं। फिर गृहस्थ से पैसे लेकर कहते हैं कि छुड़ाकर लाता हूँ! ऐसा करके इन्होंने बहुत पैसा जुटाया है, माँ! उस दिन दुकान पर मिठाई खा रहे थे।"

राईमणि के कलेजे में बड़ी चोट लगी थी यह सुनकर।

"मेरे तो करम फूट गये हैं। बच्चों की बातें भी इनके कानों में नहीं पड़तीं, हे भगवान!" सुदाम मुँह काला करके घर से निकल आया। नहीं, कुछ उपाय करना होगा। अपने घर के इस हंगामे से वह बड़ा कुंठित था। तभी जब हाबू पाल ने उसे बुलाकर महा-सम्पदा की बात कही तो वह समझ नहीं पाया।

हाबू बोला, "बैठ! मूढ़ी खा।"

"थोड़ा गुड़ दीजिये, बाबू!"

"दूंगा, दूंगा। अब सुन।"

"बोलो, बाबू!"

"तुमने कही थी न, सपने में भगवान के आने की बात?"

"दिखे?"

"पहले तो सपने देखता ही नहीं था। भैंस की तरह सो जाता था। साँप की बोली, बेंग की बोली लगती थी।"

"पता नहीं।"

"खाता भी तो बहुत था।"

"हाँ, खाते तो थे।"

"मेरे पेट में न जाने कितनी बोटियाँ और मछलियाँ हैं, यह कहने की बात नहीं है। लेकिन खाना बन्द होने पर सपने दीखने लगे। और कितनी आश्चर्य की बात है कि हम गौर निताई के भक्त हैं, पर मुँह से सिर्फ़ 'माँ! यह क्या किया माँ!' निकला था।"

"सच ?"

"हाँ, एकदम सच! तब कल रात सपने में देखा, माँ शीतला आयी हैं। सोने के दंड को हिला-हिला कर कह रही हैं—मेरी प्रतिष्ठा कर, बेटा!"

"शीतला माँ ?"

"हाँ। मैं क्या शीतला माँ को नहीं पहचानता ? अहा! माँ हँस रही थीं। उनका वाहन गधा भी हँस रहा था।"

"नमस्कार बाबू! ऐसी बातें सुनने से भी पुण्य होता है। अब क्या कोई साला ऐसे सपने देखता है ?"

"अरे! प्रतिष्ठा होगी। तेरी बात सच हो गयी। पर तेरा तो कुछ भी नहीं हुआ।"

"नहीं बाबू, सब तुम्हारे पास ही है।"

"वह तो जानता हूँ रे! लेकिन तेरी देखभाल करना मेरा कर्त्तव्य है।"

"वह तुम जानो, बाबू!"

"मंदिर का प्रसाद मिलेगा और बीच-बीच में भगवती की देखभाल भी करना!"

"कैसे ?"

"माँ शीतला सिखा देंगी।"

आज हाबू दया और दाक्षिण्य की मूर्ति हो गया है। यह समझकर सुदाम बोला, "बाबू, बड़े कष्ट से दिन बीत रहे हैं। यदि कुछ सहायता मिल जाती...!"

"तुझे क्या 'न' कहूँगा ?"

हाबू आज दूसरा ही व्यक्ति है। उसने सुदाम को एक पल्ला चावल दे दिया।

एक मान कचू भी दिया। ठीक है, मुँह काटने वाला है, पर है तो !

हाबू बोला, "इसे सुखा लेना।"

"ज़रूर !"

एक विजयी की तरह सुदाम घर लौटा। राधी से बोला, "चावल और कचू रख दे, बेटी ! मैं ज़रा देखूं, कहीं से मछली मिलती है या नहीं ?"

"यह तो बहुत बड़ा है, बाबा !"

"हाँ रे, छाया में हुआ है।"

"मुँहे तो नहीं काटेगा ?"

"मिर्च-खटाई के साथ पकाने पर कुछ नहीं होगा। राजू को बुला लाऊँ।"

राईमणि ने पूछा, "बाबू ने दिया है ?"

"और कौन देगा ?"

"इतनी दया कैसे ?"

"अब जानो कि दुख के दिन टल गये हैं।"

"क्या पागल हो गये हो ?"

"देख लेना।"

सबेरे तो घर में कौवे-चील तक नहीं बैठ पाये थे। दोनों इतना चिल्ला रहे थे। सब भोजन की महिमा है। सारे झगड़े गुम हो गये। आज सभी ने पेट-भर खाया। मछली मिली नहीं। सो उसी कचू को सुखाकर राईमणि ने काटा। इमली और मिर्च में पकाया। सुदाम प्रसन्नचित्त बोला, "मज़ेदार बनी है। यदि इतनी सामग्री दो तो देवता भी प्रसन्न हो जाये।"

खाने के बाद वह लेट गया।

रानी बोली, "बाबा, कल चावल लाओगे ?"

"लाऊँगा।"

"बाबू देंगे ?"

"नहीं तो बकरी पकड़कर बेड़े में दे दूँगा।"

बीच-बीच में यह काम भी सुदाम करता था। गृहस्थों की बकरियों, गायें पकड़कर वाड़े में दे देता था। फिर गृहस्थों से पैसे लेकर छुड़ा लाता था। वेड़े के रक्षक के साथ उसकी साठ-गाँठ थी।

लेटे-लेटे सुदाम बोला, "आज के दिन सभी घर में हैं। खाकर, पीकर मस्त हैं। तभी अच्छा लग रहा है। ये बाबू लोग रोज कितनी अच्छी चीज़ें खाते हैं, पर मन में कोई अच्छी बात नहीं जगती।"

"क्यों, सूद का जो हिसाब जगता है!"

"इस कलियुग में भगवान-देवता भी हरामी हो गये हैं, समझी? हमारे सपने में शीतला नहीं आती, बाबू के सपनों में आती है।"

"आने पर तुम क्या करते? तुम्हारे पास क्या पैसे हैं जो मंदिर बनाते?"

"सपना देखने पर कुछ तो होता ही। लोग अपने-आप पैसे देते।"

"अरे, तब सभी यही कहते कि भूख शांत करने के लिए राधी का बाप स्वाँग कर रहा है।

"ठीक कहती हो।"

2

सुदाम ने कहा था, "सपने में अगर भगवान को देखो तो कुछ काम की बात हो।"

हाबू ने सपना देखा और अब वह शीतला के बारे में कुछ करने को उद्धत है।

बड़े समारोह के साथ शीतला-मंदिर का निर्माण शुरू हुआ। मंदिर के निर्माण में मजूर खटने लगे।

सुदाम और शीतला का प्रचार पंचमुख से हुआ। सब 'धन्य-धन्य' कहने लगे।

हाबू ने पीतल की प्रतिमा गढ़ायी। पीतल के अनेकों बरतन उसके घर बंधक थे। किसी की देगची, किसी का परात—सब प्रतिमा में चले गये।

तभी देव् राय आये।

"यह क्या किया, हाबू ? मेरा अच्छा गमला भी प्रतिमा के लिए दे दिया ? वह तो मैं छुड़ा ही लेता ! मेरे पूर्वजों का गमला है। ये सारी चीजें क्या कोई लौटा सकता है ?"

आजकल माँ के प्रसाद-स्वरूप हाबू के मुख पर सदैव हँसी रहती है। हँसा और बोला, "सोच लो, देवी के काम में दान कर दिया। तुम्हारी ठाकुर माँ इसी गमले में पूजा करती थी। तुमने इसे बंधक रख कर पाप किया था। इस पाप से मैंने तुम्हें मुक्ति दिलायी। समझे !"

"अरे ! दस रुपये के लिए...।"

"घोड़े के चूतड़ पर रुपये उड़ाते हो...वह तो बंद हुआ। माँ ने तुम्हें शिक्षा दी।"

पत्नी ने पूछा, "पीतल की मूर्ति की जगह सोने की क्यों नहीं बनवायी ?"

"बचपना करती हो। पीतल में क्या बुराई है ? देख लेना, इसी का नाम कनक-शीतला होगा।"

"कैसे होगा ?"

"होगा नहीं क्या ? दिलीप क्या कर रहा है ?"

दिलीप इस हरिरामपुर की एक मात्र साहित्यिक प्रतिभा है। बाप की कपड़े की दुकान है, डायमंड हारबर में। बाप की एकमात्र संतान दिलीप एक बार एक कविता कलकत्ते की पत्रिका के पूजा-विशेषांक में छपवा पाने में सफल हो गया था। उसे यह विश्वास हो गया कि वह पैदाइशी कवि है। वह कविता स्वर्गीय विधानचंद्र राय की प्रशस्ति के रूप में लिखी गयी थी। तब विधानचंद्र के दल का शासन चल रहा था।

उस दल के ग्रामीण लड़कों ने दिलीप की भक्ति शुरू कर दी।

इसके बाद उसने सिद्ध-साधक महेश बाबा, शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, सरोजिनी नायडू, महात्मा गांधी, नेहरू, केनेडी, पहलवान प्रसादमलिक—सभी की प्रशंसा में कविताएँ लिखीं।

हरिरामपुर के लड़कों ने उसे 'साहित्य-भारती' की उपाधि दी।

इसी दिलीप को हाबू ने बुलाया। कहने लगा, "किताबों की बिक्री

होगी। गाड़ी में, मेले में, हाट में गीत गाते हुए लौंडे घूमेंगे। यही सब दिमाग़ में रखते हुए कनक-शीलता की महिमा में एक कविता लिख दो।"

दिलीप ने सर खुजलाया।

"पैसे दूंगा, समझे ?"

"नहीं-नहीं, रुपये नहीं चाहिए।"

"मुझे सुनाना पहले।"

"मेरा नाम तो रहेगा ?"

"हाँ।"

"कितनी छपेगी ?"

"एक लाख।"

दिलीप उत्तेजित हो उठा। एक लाख किताबों पर उसका नाम रहेगा, यह क्या कम गौरव की बात है ? वह तुरंत अपनी दुकान पर गया। बाप से बोला, " 'दुकान देख, दुकान देख' कहते हुए मेरे पीछे मत पड़े रहा करो, समझे ? मैं एक बहुत बड़े काम में व्यस्त हूँ।"

पत्नी से बोला, "मेरे पास तक नहीं आना। पंखा झल दूं, पैर दबा दूं—यह सब बातें मुझे न सुनाना। भगवान की किताब लिख रहा हूँ। खूब 'रिलिजियन' होकर रहना होगा।"

इसी तरह 'कनक-शीतला का महात्म्य' या 'बाबू हाबूचन्द्र पाल को स्वप्नादेश की प्राप्ति' किताब का सृजन शुरू हुआ।

"कनकशीतला कनकशीतला
रहीं कहाँ, किन भवनों में,
कब आयीं, कहाँ से उतरीं,
तुम हाबू साधक के सपनों में !"

चार पंक्तियाँ लिखकर ही उसकी समझ में आ गया कि वह तो निमित्त मात्र है। सरस्वती की उस पर असीम कृपा हुई है। दल के गुंडों को बुलाकर उसने कहा, "इस बार मुझे 'साहित्य-रत्नप्रभाकर' की उपाधि से सम्मानित किया जाये। सारा खर्चा मेरा।"

मंदिर बना, प्रतिमा बनी, किताब लिखी गयी, छपी भी। हाबू ने

सात्यकि से कहा, "भगवान का महात्म्य तो तू मानता नहीं। अब देखना !"

"क्या देखूं ?"

"सब शीलता के नाम पर दूंगा। ज़मीन, पोखर, बगान, तिजारती कारबार, आटा-चक्की, धान चक्की...स—ब।"

"बापू ! यह क्या बात हुई ?"

"पूस में मेला लगेगा।"

"उस समय क्यों ?"

"सूअर ! उस समय किसानों के हाथ में पैसे रहते हैं।"

"समझ गया।"

"ठेंगा समझ गया !"

"क्यों ?"

"तुम तब सिनेमा दिखाना।"

"मैं, सिनेमा ?"

"कलकत्ता जाना, भाड़े पर फ़िल्म ले आना, धार्मिक।"

"धार्मिक ?"

"और नहीं तो क्या रोमांस की ?"

"समझ गया।"

"ठेंगा समझे ! लोगों में से धर्म-भाव उठ गया है। मैं वही धर्म-भाव उनके मन में लौटा लाऊँगा।"

सात्यकि अभिभूत हुआ।

"इस काल में सोना पैदा होगा।"

हाबू पाल के ससुर भी पट गये। नवीन ने गाँव में काफ़ी बड़ा लेक्चर दिया।

"भाइयो ! धनी-वर्ग के प्रतिनिधि हाबू पाल की बातों में न आइये। धर्म अफ़ीम है। सर्वनाश का मूल। वह सपना-वपना सब बेकार की बातें हैं। पूजा से, मेले से हज़ारों तरह से वह हमारे पैसे हड़पना चाहता है।"

नवीन ने अपने लेक्चर में काफ़ी-कुछ कहा। साथ ही वह 'वर्ग-स्वार्थ, वर्ग-रहित समाज और पूंजीवादी केंद्रीय सरकार' इत्यादि भी कहना नहीं

भूला ।

लेकिन सच्चा, पागल और ग़रीब होने के कारण नवीन उनके दल में भी संशय का पात्र है। इन लोगों में उसके दल के नेता भी शामिल हैं।

ये नेता दूरदर्शी हैं। मुसकरा कर बोले, "नवीन के जैसा बर्ताव करने पर हानि होती है। हावू पाल यथेष्ट क्षमताशील हैं। उन्हें तो अपने दल में लाना होगा। उन्हें विरोधी बनाने पर वोट कट जायेंगे।"

एक ने कहा, "अब छोड़िए। भारत एक धर्म-निरपेक्ष देश है। यहाँ जिसका जो मन चाहे, जहाँ चाहे, जिस पर चाहे विश्वास कर सकता है। धर्म-कार्य में वाधा देने पर लोग विगड़ जायेंगे।"

इन सभी नेताओं के पास काफ़ी ज़मीन-जायदाद है। वे मन-ही-मन हावू पाल की वुद्धि की प्रशंसा करते हैं। एक ने तो यह तक कह दिया, "सब-कुछ शीतला के नाम कर दिया है। अव पकड़िए उसे!"

अनेक संशयी लोगों ने कहा, "देखना, उसकी ज़मीन छिन जायेगी।"

"क़ानूनी तौर पर वड़ा मज़वूत है। जनमत तैयार कर रहा है। इसके वाद उस पर हाथ डाला तो दसों गाँव के लोग विगड़ जायेंगे।"

इस तरह हावू पाल जीत गया। उसने मंदिर के चारों तरफ़ पाँचू ठाकुर, मनसा, घेंटू और वट वृक्ष के नीचे वटेश्वर शिव का मंदिर भी वनवा दिया। वहाँ मिट्टी की मूर्तियाँ स्थापित हुईं।

इस तरह उसने वहुतों का दिल जीत लिया। फिर वड़ी धूमधाम से मंदिर के द्वार सर्वसाधारण के लिए खोल दिये गये। हावू परचे वाँट रहा था —

"जाति-भेद भुला दें। मंदिर में सभी को प्रवेशाधिकार है।"

"साम्प्रदायिकता त्यागें। मुसलिम भाई-वहन इच्छा होने पर स्पेशल पूजा करें। किसी के लिए कोई वंधन नहीं।"

नवीन को भी यह कहने पर वाध्य होना पड़ा, "धर्म के नाम पर ऐसी राजनीति हावू से ही संभव है।"

हावू के स्वप्न के वारे में किसी को अव संदेह नहीं रहा।

अव सुदाम के ऊपर शीतला की कृपा हुई और सुदाम ने वड़े विश्वसनीय रूप से होश खोकर वकना शुरू किया, "पूजा दे, पूजा दे!" वह घूल

चाटता और सीने को पकड़ लेता था।

सब ख़त्म होने पर भी सुदाम का आसन्न भाव ख़त्म नहीं हुआ। हाबू ने लड़के से कहा, "कैसा रहा? कुछ समझते हो?"

"माँ कसम बापू, कुछ नहीं समझ सका।"

"देव-द्विज में अगर भक्ति हो तो क्या होता है, देखते हो?"

हाबू ने सुदाम को बुलाया और उससे कहा, "माँ का भोग तू खा लिया कर। अन्न-भोग तुझे दूंगा।"

"घर ले जा सकूंगा?"

"हाँ। इसके अलावा साल में दो जोड़ी कपड़े और गमछे। तेरे दुख दूर हुए, जा।"

"थोड़ा किरासन भी।"

"किस लिए?"

"कोप दूर होने पर भी बदन में दर्द बाक़ी है।"

"दूंगा।"

सात्यकि ने पूछा, "दान का छप्पर खोल दिया है क्या?"

हाबू गम्भीर हो गया। यह स्वप्न-दर्शन भी सुदाम के चलते ही है। उसका वह सपना, जिस में उसने गधे की पीठ पर शीतला के रूप में विनोद धोबी की खूबसूरत बीवी को देखा था, मंदिर की प्रतिष्ठा—सब-कुछ किसी अलौकिक शक्ति के प्रभाव के फलस्वरूप हो रहा है।

किसने उसे पांचू, घेंटू, मनसा और बटेश्वर-शिव की प्रतिष्ठा करने की प्रेरणा दी?

किसकी प्रेरणा से उसने तमाम देवी-देवताओं को लपेट लिया?

क्यों उसने शीतला की किताब छापी?

इसके पीछे किसी बदमाश बुद्धि का हाथ नहीं है।

सब किसी अलौकिक शक्ति की प्रेरणा से ही घट रहा है।

हाबू गंभीर हो उठा। थोड़ी देर हिलता रहा। आँखें बन्द होती और खुलती रहीं। फिर बोला, "सुदाम बड़ा भाग्यशाली है रे!"

"तभी तो भूखा-नंगा घूमता है।

"अरे, यह भले देखो। उसने कहा था तभी तो सपने में माँ आयीं।"

"अब उसे पोमोगे ?"

"बेटा सातू ! मुझ पर विश्वास रखो। कर्म-यज्ञ शुरू किया है मैंने हरिरामपुर में। सुदाम खायेगा यहाँ, यही सोचते रहे हो न ? देखो, इसी सुदाम को इसका क्या फल मिलेगा ?"

बहुमुखी माँ शीतला के मंदिर के विस्तार और उन्नयन पर्व में सुदाम और गाँव के कई लोग बड़े सुखी हुए।

होम्योपैथिक डाक्टर के चार गुंडे लड़के बाप का खाकर गुंडई करते थे और बीच-बीच में दारू पीकर हाबू के खून से नहाने की इच्छा ज़ाहिर करते थे। हाबू ने 'माँ शीतला होमियो हॉल धर्मार्थ चिकित्सालय' खोला और वह डाक्टर को सौंप दिया। चारों गुंडों को 'माँ शीतला इलैक्ट्रिक और डेकोरेटर कम्पनी' की दुकान खोल कर दे दी।

'माँ शीतला खाद और कीटनाशक भंडार' खोलकर नवीन के भाई को दे दिया। इसके अलावा सुदाम और उसके जैसे और लोग राह चलते लोगों को पकड़ लाते और मंदिर की राह दिखाते थे।

धीरे-धीरे माँ शीतला का बहुमुखी प्रताप जम गया। "यह सब घोर बदमाशी, राजनीतिक धंधेबाज़ी है," कहने पर नवीन ने अपने नेता की डाँट खायी।

नेता बोले, "शीतला ख़राब कैसे हैं ? वे उपेक्षितों-शोषितों की देवी हैं। इन्हें ही गणदेवता कहते हैं।"

"ख़ाक समझते हैं आप !"

"जैसे तुम ही सब समझते हो !"

"जन-गण की तुष्टि के लिए जो भी किया जाये उसे मान लें ?"

"जिस कार्य को इतने लोगों की 'सपोर्ट' है, उसे न मानने पर वोट कहाँ से मिलेंगे ?"

"हाबू पाल सूदख़ोर महाजन नहीं है ?"

"अब बदल रहा है।"

"ठेंगा बदल रहा है। शीतला का साम्राज्य फैलाकर नाना प्रकार से पैसे खींच रहा है।"

"कितने लोगों को नौकरी दी है...सो ?"

"आप ही देखिए।"

नवीन गुस्से से जलता हुआ चला गया। भाग्य कुछ ऐसा कि वह बीमार हो गया और उसकी माँ ने मंदिर में बलि चढ़ायी।

हाबू ने कहा, "इतनी दुखी मत हो, काकी ! वह मुझे फेंक सकता है। मैं क्या ऐसा हूँ ? वह डाक्टरी दवाइयाँ खा रहा है। दवा के साथ माँ का चरणामृत भी दे देना। भला ही होगा।"

नवीन मेलिग्नेंट मलेरिया के धक्के से बयालीस दिन बाद अन्न-जल ले पाया। तब उसने देखा कि उसके बिस्तर के नीचे पूजा के फूल और पत्ते पड़े हैं। उसकी माँ ने कहा, "तू दवा से ठीक नहीं हुआ। दवा के साथ माँ का चरणामृत भी पिलाया है। तभी तू बचा है।"

"माँ का चरणामृत !" नवीन को भयानक चोट पहुँची। शरीर दुर्बल था। आँखों में आँसू आ गये। पराजय, भयानक पराजय !

नवीन के ठीक होने पर सुदाम एक गुच्छा कच्चा केला ले आया था। नवीन रूखा था। उसने उसे धमकाया।

सुदाम फिर भी नवीन से प्यार करता है।

"तुम रोते हो ?"

"तुम नहीं समझोगे।"

"माँ का चरणामृत पी लिया, इसी कारण न ?"

'तू समझेगा नहीं।"

"क्या करेगा, बोल ? वह क्या तुम्हारे जैसी समझदार है ? जो समझ में आया, वह कर दिया।"

नवीन को फिर धक्का लगा। सच ही तो है। उसने खुद को प्राचीन अंधविश्वासों के चंगुल से मुक्त किया है। पर माँ ? उसे तो उसने कभी नहीं समझाया।

सुदाम बोला, "अब रोओ मत। नहीं तो बुख़ार चढ़ जायेगा। तब डबल भोगोगे।"

"तू ही सारे कांड की जड़ है।"

"क्या किया है मैंने ?"

"तूने ही तो सपने की बात कही थी। उसने सपना देख कर व्यवसाय

शुरू कर दिया। तेरे भाग्य में, हिस्से में एक थाल भात आया।"

"हाँ, वह तो है।"

"घर में सब को देता है ?"

"नहीं।"

"पत्नी-लड़की अभी भी चावल बीनते हैं ?"

"हाँ।"

"रुपये-पैसे देता है ?"

"कैसे देता ?"

"पैसा कहाँ जाता है ?"

"कभी दिया है किसी ने पैसा ?"

"तेरे चलते ही यह हुआ !"

"कहता है, तेरे दुख के दिन ख़त्म हुए।"

हाबू पाल ने सुदाम से यही बात कही। बोला, "तेरे दुख नहीं रहेंगे, यह कहा है मैंने।"

"हाँ बाबू !"

"दुख है कहाँ ?"

"सिर पर छप्पर नहीं। पत्नी-बच्ची के बदन पर कपड़े नहीं। उन्हें खाने तक को नहीं जुटता, सो क्या दुख नहीं है ?"

"उनका दुख उनका है। जिसका जो भाग्य है, वह उसे भोगता है। सिर पर छप्पर नहीं है तो तू मंदिर के बरामदे में क्यों नहीं रहता ?"

"देखता हूँ।"

"और क्या ?"

"हाट-हाट घूमता हूँ—कोई तो कुछ दे ! उन्हें तो रुपये देते हो !"

"उन्हें भात तो नहीं देता।"

सुदाम सोचता-सोचता घर लौटा।

दरअसल राईमणि, राधी और रानी आजकल उसे ही कोसते रहते हैं। भात की थाली से भी कोई फ़ायदा नहीं।

राईमणि कहती है, "वह तो केवल एक आदमी के लिए है—दाल और बैंगन। देखो, भात के कारण ही हम ठगे जाते हैं। दाल, बैंगन न भी

हो तो खा सकते हैं ।"

राधी शहर में चावल बेचती है। उसकी आंखें खुल रही हैं। बोली, "बाबू तुम्हें ठग रहा है, बापू !"

"चुप रह !"

"लड़की ने ठीक ही तो कहा है । जो तुम उसके यहां खट रहे हो, कहीं और खटते तो हमारे दुख कुछ तो दूर होते ।"

"देखता हूं ।"

वह क्या करे, सोच नहीं पाता सुदाम । बाबू एक थाल भात देता है। घूमने-फिरने के लिए पैसे नहीं देता । लेकिन बाबू दूसरों को देता है । सुदाम के मन में कभी उत्साह था कि उसके कारण ही बाबू को स्वप्न आया। उसके शीतला-संसार में सुदाम ही उसका सबसे निजी है ।

तमाम दुकानें । कारबार । सुदाम इनमें कहीं नहीं ।

सुदाम के नाम बाबू दो बीघा ज़मीन ही लिख देता ।

अथवा, बंधक रखा बागान ही लौटा देता ।

एक थाली भात । एक वक़्त भात । दूसरे वक़्त हवा ।

दो जोड़ी कपड़े ।

सुदाम क्या करे ? कहां जाये ? कुछ जुगाड़ भी तो नहीं है। जितने दिन ज़मीन थी, खेती करता था। जमीन नहीं है अब । केले, मूली की चोरी करता है, इसलिए कोई उसे बागान का काम भी नहीं देता ।

हाबू पाल देता है। चाय-रोटी खाने को दो, बीड़ी पीने को पैसे दो, सुदाम खटेगा । यह देना होगा, यह रेट है—यह वह नहीं कह सकता । तभी उसकी पत्नी-पुत्री चावल बीनते हैं ।

इसी कारण गाँव के लोग भी उसे बुरी नज़र से देखते हैं। नवीन बाबू कमर में गमछा बाँध, सिर पर छाता लगाकर घूम-घूम कर लोगों को समझाते हैं कि सरकार ने मजूरी बढ़ा दी है, और तुम लोग तीन पैसे भी ज़्यादा नहीं माँगते ।

बहुत दिन हो गये उसे घूमते ।

"रुको, देखता हूँ कैसे नहीं देता ? तुम दूसरे किस्म के मजूर कैसे हो ?"

इतना सब-कुछ करने पर भी मजूरी नहीं बढ़ी। सुदाम जैसे अकाल

के कीड़ों के कारण सब नष्ट हो गया।

इस गाँव के लोग माँग-ताँग कर खा लेंगे, सोचकर वह कलकत्ता चले गये।

सुदाम जैसे कुछ निस्पृह, निर्विकार लोग इस गाँव से चिपके रह गये। गाँव ही सब-कुछ है, शहर नहीं।

इन सभी लोगों के पास ज़मीनें-जायदादें थीं। सारी हाबू के पेट में चली गयीं। अब ये अपने ऊपर भी विश्वास खो बैठे हैं।

सुदाम तभी से अति सहज भाव से खटता चला आ रहा है। इस कारण वह अन्य ग्रामवासियों का भी कोपभाजन बना है। उनके अनुसार सुदाम, हाबू पाल का चमचा है।

राईमणि के लिए उनके मन में सहानुभूति है। वह भी गाँव के अन्य भूमिहीनों जैसी है। सुदाम तो कुलांगार है।

धीरे-धीरे सुदाम भी समझ गया कि इस शीतला-संसार में वह कुछ भी नहीं है।

सिर्फ़ जब वह पगलाता है तो नहाने के बाद उसके गमले में कुछ पैसे आते हैं।

इतना ही उसका होना है। बस इतना ही।

बड़े दुख से पूस के महीने में वह सात्यकि के तम्बू में घुस गया।

फ़िल्म का नाम था 'काली माँ का पागल बेटा ठाकुर रामकृष्ण'। नाम कुछ लम्बा था। लेकिन इसके पीछे भी सपना था। निर्माता कुछ नहीं समझ पाते, तब भी काली घाट के माँ के मंदिर में बैठकर चाभी मार्का बीड़ी पीते हैं। एक दिन वे बैठे-बैठे सो गये। सोते-सोते माँ से कहा, "तू तो सब जानती है। रामकृष्ण के नाम की अनेकों पिक्चरें आयी हैं। फिर भी मैंने एक और बनायी है। क्या नाम दूं? हो सके तो बताओ। आगे तुम्हारी इच्छा।"

सपने में माँ ने कह दिया कि यही नाम दे दो।

माँ के द्वारा नामकरण के फलस्वरूप यह फ़िल्म गाँव, शहर-क़स्बा, मेले—सभी जगह खूब चली। छोटे-छोटे हॉलों में चली। विज्ञापन के ख़र्च की भी ज़रूरत नहीं हुई। फ़िल्म ने खूब पैसा कमाया। इस स्वपनादेश का

अर्थ ढूंढ़ने की कोशिश एक युवक कर रहा है।

सिनेमा में रामकृष्ण की भूमिका में अभिनेता बोले, "संसार में रहना पड़ेगा। कीचड़ की पाँकाल मछली की तरह। वह कीचड़ में रहती है, पर उसके बदन पर कीचड़ नहीं लगती। सभी को ऐसा ही होना चाहिए।"

इस बात ने सुदाम को बड़ा प्रभावित किया। सिनेमा देखकर वह बाहर निकला और बड़ी देर चाय की दुकान पर गुमसुम बैठा रहा।

नवीन के रिश्ते के भाई द्विजपद ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ ?"

"उस बात का मतलब क्या था ?"

"कौन-सी बात का ?"

"कीचड़ की पाँकाल मछली की तरह...।"

"लेकिन बदन में कुछ नहीं लगे।"

"नहीं, इसका मतलब है कि दुनिया के झमेलों से भी प्रभावित न हो?"

"नहीं।"

द्विजपद गंभीर व्यक्ति है। काफ़ी सोच-विचारकर बोलता है। इसी-लिए वह गाँव में ज्ञानी समझा जाता है। इसमें उसकी अपनी कोई विल-क्षणता नहीं है। सिर्फ़ उसके बोलने का अन्दाज़ ही ऐसा है।

सब तूफ़ान उठता देखेंगे। द्विजपद आसमान देखेगा, साँस भरेगा और छोड़ेगा। अंत में बोलेगा, "आकाश की गति ठीक नहीं है। आग बुझा दो, गायें खोल दो।"

आग न बुझे तो आग लगने की संभावनाएँ हैं और आग लगने पर गोहाल में बँधे पशु जल-मर जायेंगे। यह बात सब जानते हैं।

लेकिन सुनकर सभी कहते हैं, "देखा ? कितनी देर सोच-समझ कर द्विज ने यह बात कही है। बड़ा ज्ञानी है।"

द्विजपद ने सुदाम को समझाया बड़े ही ममत्व से। लाखों में एक बात कही उसने। कहने में आसान है, करने में बहुत कठिन— 'दुनिया में कुछ भी होता रहे। तुम यह सब क्यों झेलते हो ?"

तभी नवीन बोला, "किसे समझाते हो ? हमारा सुदाम तो पाँकाल है। अपने घर की कोई बात वह न जानता है और न सुनता है।"

सुदाम ने कोई जवाब नहीं दिया। वह अभिभूत हो उठा।

"तुम्हारे जानने की बात नहीं।"

"क्या हुआ ?"

"रास्ते में गुंडों और पुलिस की मारामारी थी और बम फट रहे थे। हम भागे, तो बचे हैं। डेढ़ किलो चावल गिर गया, सो महाजन ने कितनी बातें सुनायीं।"

"क्या कहा, चावल देगा ?"

"कल तो नहीं देगा। शायद परसों दे।"

"परसों देगा ?"

राईमणि का दुर्बल शरीर दीवार के साथ लगकर हिलता रहा। रुंधे गले से बोली, "पैर पकड़ने होंगे। महाजन क्या, तुम तो माँपो के साथ आढ़त लगाकर बैठे हो ! यदि बीस किलो देते हो, हम बाइस किलो करके बेचते हैं। तब बाबू को खिलाओ, पुलिस को खिलाओ, जितना जंजाल—सब हमारे सिर। तुम क्या करोगे ?"

राईमणि ने बातें कहीं। सुदाम को बड़ी चोट लगी। राईमणि के बाल उड़ गये हैं। गले की हड्डी निकल आयी है। छाती तो कहने-भर को भी नहीं है।

कभी घने बाल थे राईमणि के। सुन्दर वक्ष था। धान उबालने के बाद वह बग़ैर थके बाल्टी-भर कपड़े पोखरी से धोकर लाती थी। धान के गुच्छे बाँधकर लक्ष्मी-पूजा करती थी।

सुदाम चाहकर भी पाँकाल नहीं हो सकता। उसके हृदय को बेध रही हैं ये बातें।

राधी बोली, "छप्पर ख़रीद सकते तो कुछ होता।"

राईमणि ने आँखें बन्द कीं। क्षीण हँसी हँसकर बोली, "वह तो मैं भी जानती हूँ, रे राधी ! लेकिन पैसे कहाँ हैं, बेटी ? अगर एक सौ रुपये होते तो कुछ हो सकता था। तीनों माँ-बेटियाँ इतना खटती हैं। किसी दिन दस रुपये भी पास नहीं हुए।"

सुदाम ने साँस ली।

"यह ले।"

"क्या है ?"

"कपड़ा। मंदिर ने दिया है। इसे द्विजबाबू की पत्नी को बेच दे।"

"फिर?"

"कल का दिन तो चल जायेगा।"

"फिर? तुम्हारी तो शीतला माँ हैं। हमारा कौन है, बता सकते हो?"

सुदाम ने कुछ नहीं कहा। सवेरे-सवेरे उसने राजू को बुला कर कहा, "मैं काम की तलाश में जा रहा हूँ। तू जल्दी घर लौट आना। घर की देखभाल करना।"

राजू ने हामी में सिर हिलाया।

"माँ सो रही है, जगाना नहीं। इस थैली में चार रुपये हैं, माँ को दे देना।"

पोखर-संस्कार के काम में चला गया सुदाम। जाते समय नवीन के साथ भेंट हुई।

"क्यों भाई, पाँकाल नहीं बन पाये?"

"अब जो कहो।"

"जाओ, काम पर जाओ।"

"चेहरा क्यों लटका है, क्या हुआ है?"

"क्या हुआ है?"

नवीन बड़ा अस्थिर है। उसने कहा, "मैं पागल हो गया हूँ।"

"क्या बक रहे हो?'

"बक रहा हूँ? मेरा दिमाग़ ठीक नहीं है, सुदाम! सब जिसे अच्छा कहते हैं मैं उसे अच्छा नहीं मान पाता, ऐसा क्यों?"

"हुआ क्या है, यह तो बताते नहीं हो?"

"होगा क्या?"

नवीन जैसे खुद से ही बातें कर रहा था। हाबू पाल की बातें। किसी चीज़ का दाम नहीं दिया। उसने सभी के मुँह पर जूता मारकर दिखाया कि वह सभी को किस तरह टाइट रखता है।

"क्या किया है?"

"वह इलेक्शन में खड़ा हो रहा है न!"

"कांग्रेस के टिकट पर ?"

"कांग्रेस ? वह हमारी सपोर्ट पर खड़ा हो रहा है। यह जो शीतला-कारख़ाना चलाया है, उसी से उसका प्रभाव बढ़ा है। आज सुना है कि ग़रीबों के देवता को प्रतिष्ठित करके खुद ग़रीबों के मन में बैठ गया है। वाह रे ! इस साले हाबू के विरुद्ध कितना कुछ किया, कितने आंदोलन चलाये ! आज सुन रहे हैं कि हाबू पाल को हम जितायेंगे, नहीं तो भुवन साँपूई जीत जायेगा।"

"तुम यह सब बातें सोचकर क्या बिगाड़ लोगे उसका ?"

"तुम क्या समझोगे, बोलो ? जीवन-भर एक तरह से खटता रहा हूँ। कितनी बार जेल गया हूँ ! ऐसे लोगों के कारण काकद्वीप में विभाजन... हुए ! तुम इस झमेले की जड़ हो। हाबू को कहने गये, 'बाबू ! सपने में भगवान नहीं देखते ?' उस हरामज़ादे की मति जगायी तुमने। आज उसकी शीतला जन-गण की देवी हो गयी है !"

"हो जाने दो। जो हो गया सो हो गया।"

"वह सुख भोग रहा है और तुम मजूरी में खट रहे हो। ठीक है।"

"वह क्या अब नेता बनेगा ?"

"वह अब पोखर चोरी करेगा। सूदख़ोर, महाजन और जोतदार—क्या कभी इनके स्वभाव बदलते हैं ?" बड़े दुखी मन से नवीन चला गया। जाते-जाते बोला, "अब ये सारी बातें मैं कैसे मान लूँ ?"

नवीन की व्यथा और जलन का कारण सुदाम नहीं समझता। तब भी नवीन के चेहरे की हताशा उसका कलेजा चीर देती है। नवीन चिरकाल से ही सही बातें कहता आ रहा है। गाँव के सभी लोग उसकी सचाई, साहस और मनोबल के कारण उस पर श्रद्धा रखते हैं। पोखर पर सुदाम ने कुछ चुट-कियाँ भी सुनी हैं— "वह हाबू पाल का चमचा है, शीतला-संसार का एक आदमी है।" किसी ने कहा, "तू तो पाँकाल हो गया है। झमेले सिर पर ओढ़ता ही नहीं।"

बूढ़े हालिम शेख़ ने कहा, "पेट की भूख से आया है यहाँ। इतनी बातें क्यों कर रहे हो ?"

दूसरों के साथ सुदाम भी नमक-भात, मिर्ची के साथ खाता था। दूसरों

[illegible] निश्चिन्त हो जाएगा।

इसके भोजन की समस्या नहीं है। मंदिर है।

इसके आगे वह नहीं सोचता।

तभी पाठक, या—सब्जियों का जुगल उसके पास आया और उसके पास बैठकर बोला, "एक बात कहूँ।"

सुदाम चौंका।

"बोलो भाई, क्या बात है?"

"तुम्हारी दो लड़कियाँ हैं।"

"हाँ।"

"शादी की बात सोचते हो?"

"क्यों?"

सुदाम फिर चौंका। राशन, पानी, रानी—सभी के बारे में साईंमणि सोचती है।

वही धर्मशाला से खरीद लाती है कपड़े—पुराने उतारे हुए, जो साईंमणि जैसों के लिए ही दुकानदार रखते हैं।

उनकी बीमारियों में जलपट्टी, तेलपट्टी, होम्योपैथी दवाइयाँ—सबकी व्यवस्था साईंमणि ही करती है।

लड़कियों के बारे में वह कैसे सोचे? पर जुगल को यह बात कहे भी कैसे?

"तुम्हीं तो सोचोगे। तुम उनके बाप हो।"

"क्यों, कोई खबर है? तुम पूछ रहे हो कि इस बारे में मैं सोचता हूँ या नहीं। मैं तो...वह सब उनकी माँ देखती है...। और अब तो मजूर लड़का भी...सुनता हूँ, घड़ी-सायकिल, बैटरी-रेडियो माँगता है।"

"बाप शादी नहीं कर सकता, तो क्या लड़कियाँ घर में पड़ी रह जाती हैं या उनकी शादी नहीं होती है?"

"कांग्रेस के टिकट पर ?"

"कांग्रेस ? वह हमारी सपोर्ट पर खड़ा हो रहा है। यह जो शीतला-कारख़ाना चलाया है, उसी से उसका प्रभाव बढ़ा है। आज सुना है कि ग़रीबों के देवता को प्रतिष्ठित करके ख़ुद ग़रीबों के मन में बैठ गया है। वाह रे ! इस साले हाबू के विरुद्ध कितना कुछ किया, कितने आंदोलन चलाये ! आज सुन रहे हैं कि हाबू पाल को हम जितायेंगे, नहीं तो भुवन साँपुई जीत जायेगा।"

"तुम यह सब बातें सोचकर क्या बिगाड़ लोगे उसका ?"

"तुम क्या समझोगे, बोलो ? जीवन-भर एक तरह से खटता रहा हूँ। कितनी बार जेल गया हूँ ! ऐसे लोगों के कारण काकद्वीप में विभाजन... हुए ! तुम इस झमेले की जड़ हो। हाबू को कहने गये, 'बाबू ! सपने में भगवान नहीं देखते ?' उस हरामज़ादे की मति जगायी तुमने। आज उसकी शीतला जन-गण की देवी हो गयी है !"

"हो जाने दो। जो हो गया सो हो गया।"

"वह सुख भोग रहा है और तुम मजूरी में खट रहे हो। ठीक है।"

"वह क्या अब नेता बनेगा ?"

"वह अब पोखर चोरी करेगा। सूदख़ोर, महाजन और जोतदार—क्या कभी इनके स्वभाव बदलते हैं ?" बड़े दुखी मन से नवीन चला गया। जाते-जाते बोला, "अब ये सारी बातें मैं कैसे मान लूँ ?"

नवीन की व्यथा और जलन का कारण सुदाम नहीं समझता। तब भी नवीन के चेहरे की हताशा उसका कलेजा चीर देती है। नवीन चिरकाल से ही सही बातें कहता आ रहा है। गाँव के सभी लोग उसकी सचाई, साहस और मनोबल के कारण उस पर श्रद्धा रखते हैं। पोखर पर सुदाम ने कुछ चुट-कियाँ भी सुनी हैं— "वह हाबू पाल का चमचा है, शीतला-संसार का एक आदमी है।" किसी ने कहा, "तू तो पाँकाल हो गया है। झमेले सिर पर ओढ़ता ही नहीं।"

बूढ़े हालिम शेख़ ने कहा, "पेट की भूख से आया है यहाँ। इतनी बातें क्यों कर रहे हो ?"

दूसरों के साथ सुदाम भी नमक-भात, मिर्ची के साथ खाता था। दूसरों

के साथ वह भी चार रुपये रोज़ की मजूरी में से कुछ बचाता था। कुछ पूंजी हो जायेगी तो राईमणि छप्पर डाल सकेगी। कब? यह वह नहीं सोच पाता। अभी वह काम कर रहा है। चार रुपये में से बचाना कठिन था, पर वह बचाता था। ये रुपये राईमणि को देकर वह निश्चित हो जाएगा।

उसके भोजन की समस्या नहीं है। मंदिर है।

इसके आगे वह नहीं सोचता।

तभी फाटक का—पलिडांगा का जुगल उसके पास आया और उसके पास बैठकर बोला, "एक बात थी।"

सुदाम चौंका।

"बोलो भई, क्या बात है?"

"तुम्हारी दो लड़कियां हैं।"

"हां।"

"शादी की बात सोचते हो?"

"मैं?"

सुदाम फिर चौंका। राजू, राधी, रानी—सभी के बारे में राईमणि सोचती है।

वही कलकत्ता से खरीद लाती है कपड़े—पुराने उतारे हुए, जो राईमणि जैसों के लिए ही दुकानदार रखते हैं।

उनकी बीमारियों में जलपड़ा, तेलपड़ा, होम्योपैथी दवाइयां—सबकी व्यवस्था राईमणि ही करती है।

लड़कियों के बारे में वह कैसे सोचे? पर जुगल को यह बात सूझी भी कैसे?

"क्या कोई बात है ?"

"है। तुम्हारी छोटी लड़की को ट्रेन में देखकर ही मेरी बहन ने पसंद कर लिया। तुम्हारी जो हालत है, उसे वह खूब जानती है।"

"छोटी लड़की ? मेरी ?"

"हां, सुन्दर, रंग गोरा।"

"हां, वही छोटी लड़की है।"

"मेरे भांजे के लिए लड़की चाहिए। यह भी कहना ठीक रहेगा कि उसके बदन पर दाग़ हैं। इसी से उसकी पत्नी भाग गयी।"

"शादी हुई थी ?"

"हां, तब से उसने शादी नहीं की। सुधीर की उम्र बाइस-तेईस होगी। थोड़े-से दाग़ हैं। नहीं तो लड़का अच्छा है। घर भी अच्छा है।"

"क्या करता है ?"

"रिक्शा चलाता है। शाम को बीड़ी भी बनाता है। बड़ा समझदार है। सभी तारीफ़ करते हैं। बाप नहीं है। मां, और छोटे भाई-बहन। सात कट्ठा ज़मीन भी है। उसकी मां अपनी ज़मीन में कुम्हड़े और बैंगन उगाती है। पांच हंस है। सुधीर नशा वग़ैरह नहीं करता। बड़ा समझदार है। समझे ?"

"कुछ मांग भी है ?"

"नहीं, नहीं। तुम्हारी अवस्था हम जानते हैं। यदि कहो तो बात बनायी जाये।"

"बड़ी लड़की के लिए एक लड़का देखो। उसकी शादी न होगी तो इसकी कैसे होगी ?"

"देखूंगा।"

"कुछ दे नहीं सकूंगा।"

हारू सरदार ने बात काटी, "तब तो बिहार देश में शादी करनी होगी।"

"क्यों ? वह देश कहां है ?"

"बहुत दूर।"

"वे क्या यहां आते हैं शादी करने ?"

"तुम एकदम बेकार आदमी हो। सब जानते हैं, सिर्फ़ तुम नहीं जानते।"

सुदाम की इच्छा हुई कि वह कहे, वह पांकाल मछली है। सब जानता है, वही भी जानता है। पर उसने यह बात कही नहीं। सुदाम मंडल, ज्यादा बड़ी-बड़ी बातें करोगे तो हारू एक डंडा देगा। तभी वह बोला, "बोलो ना, बाबू!"

हारू सरदार बोला, "बिहार देश में एकदम लड़कियां नहीं हैं। वे आते हैं रुपये लेकर। काफ़ी रुपयों में लड़कियां ख़रीद कर ले जाते हैं। अब तो यह धंधा ख़ूब चल रहा है।"

सुदाम बोला, "वे ले कहां जाते हैं?"

"अपने देश।"

"वह कहां है?"

"धुर, कहा नहीं बहुत दूर?"

"लड़की को आने देते हैं?"

"नहीं जानता।"

"नहीं बाबू, यह कुछ ठीक नहीं लगता।"

"मैं क्या यह कह रहा हूं कि अपनी बेटी बेच दो उनके हाथ?"

"बेच दो! यह क्या कहते हो?"

"रुपया लिया, बेटी दी, यह क्या बेचना नहीं हुआ? अगर यह बेचना नहीं है तो बेचना किसे कहते हैं?"

"अरे! यह तो अधर्म है।"

सुदाम भी चला गया।

डेढ़ महीने के बाद, खाने-पीने के ख़र्च के बाद, बहत्तर रुपये लेकर लौटा तो पता चला कि भात का थाल उसके हाथ से निकल गया है।

सन्न धोबी की पत्नी ने उसकी जगह ले ली है।

मानी धोबिन के चेहरे पर सब-कुछ आक्रामक है। जैसा शरीर का ढाँचा वैसी ही आँखें और दाँत। सन्न धोबी साधारणतया जेल में ही रहता है। लूटपाट, चोरी-डकैती, गाय-चोरी—तीनों का सिद्ध साधक है। थानेदार के अनुसार वह एक विचित्र नक्षत्र में जनमा व्यक्ति है। वह लूटपाट करता है। चोरी-डकैती करता है। लेकिन गाय-चोर अपना धंधा नहीं बदलते।

सन्न ने वह हिसाब उलट दिया है।

मानी धोबिन दुखी नहीं है। भुवन साँपुई की कृपा से उसके चाँदी के बाले और हार बने हैं। मोहनी मोहन साहार की कृपा से उसने गाय ख़रीदी है।

बाबू लोग उसे नहीं छोड़ते; वह ही उन्हें छोड़ देती है, स्वाद बदलने के लिए। भयानक वाचाल है, उसे कोई नहीं छेड़ता। पर अपनी अटूट पूँजी, अपने शरीर के रहते भी वह माँ की शरण में क्यों आयी, यह समझ में नहीं आता। यह बात भी 'माँ का महात्म्य है' कह कर ही प्रचारित हुई।

मानी मंदिर में तीन दिन तक पड़ी रही थी। माँ का प्रसाद दो तो खाये, वरना कुछ भी न खाये। माँ का प्रसाद खाने-भर तक ही उसकी उन्मत्तता सीमित थी। "धूप खाती हूँ, धूना खाती हूँ।" कहते हुए वह पगलाती थी। उसे देखकर विश्वास नहीं होता।

हाबू पाल ने यह सारी बातें सुनायीं।

"उसकी उन्मत्तता देखने के लिए कितने लोग शनि-मंगल को आते हैं, पता है?"

"मेरा क्या दोष हुआ, बाबू?"

"अरे, दोष-गुण की बात नहीं है। तुम्हारी कुछ व्यवस्था की थी मैंने। भगवान के ऊपर निर्भर रहने वाले क्या मजूरी खटने जाते हैं?"

"घर में जो भूख है।"

"मैं क्या तुझे दोष दे रहा हूँ? अरे, माँ ने तो उंगली के इशारे से बता

दिया कि उसका भक्त कौन है। नहीं तो मानी को क्या अभाव है ? माँ ने उसे पाप के रास्ते से हटा दिया। यह क्या कम बात है ?"

"पर शीतला का तमाम धंधा तो मेरी उपज है।"

"क्या ?...धंधा ?"

हाबू पाल को एक स्ट्रोक और लगने को हुआ। सात्यकि पंखे से हवा करने लगा। हाबू कुछ देर तक ओह-ओह करता रहा, जैसे सुदाम ने उसे छुरा मार दिया हो। फिर बोला, "यह क्या कुवाक्य बोला तूने ? तू कितना भोगेगा, जानता है ? नवीन की तरह की बातें है इसकी। ठीक है, जाने दो। माँ जो करेंगी, वही होगा। पर तेरे कारण स्वप्न-लाभ हुआ, यह नहीं भूलूँगा। आते-जाते रहना। नौकरी भी करना।"

सुदाम बोला, "चलता हूँ, बाबू ! मजूरी करने के लिए जाना ही दोष बन गया।"

"जो समझो।"

सात्यकि बोला, "भगा दिया था, फिर उसे घुसा लिया।"

हाबू पाल बोला, "तू मेरा बेटा है कि माँ का रक्तस्राव, रे सातू ? वह नवीन का आदमी है। नवीन को नाराज़ करना क्या ठीक है ?"

"तुम क्या खड़े होगे ?"

"उन्होंने तो यही कहा है।"

"कलकत्ता जाना होगा, जानते हो ?"

"माँ यदि चाहेगी तो जाऊँगा।"

उधर सुदाम का दिमाग़ चक्कर खाता रहा। उसके पाँकाल बनने के दिन बीत गये। वह राईमणि को देख कर एक मर्तबा विचलित हो गया। तभी मजूरी में खटने गया। पाँकाल होकर नहीं रहा। कीचड़ लपेट ली, तभी दुर्भाग्य आया।

द्विजपद ने गम्भीरता से सोचा। फिर कहा, "यह भगवान की मार है। आदमी अगर अटल होकर रहे तो भगवान कृपा करते हैं। जब वह चालबाजी करता है तो उसकी कृपा ख़त्म हो जाती है। इसीलिए लोग सन्यासी बनते है, जंगल में चले जाते हैं।"

सुदाम इतनी बातें नहीं समझता। उसके हिसाब से भगवान सीधे-

सुदाम भी चला गया।

डेढ़ महीने के वाद, खाने-पीने के ख़र्चे के वाद, बहत्तर रुपये लेकर लौटा तो पता चला कि भात का थाल उसके हाथ से निकल गया है।

सन्न धोवी की पत्नी ने उसकी जगह ले ली है।

मानी धोविन के चेहरे पर सब-कुछ आक्रामक है। जैसा शरीर का ढाँचा वैसी ही आँखें और दाँत। सन्न धोवी साधारणतया जेल में ही रहता है। लूटपाट, चोरी-डकैती, गाय-चोरी—तीनों का सिद्ध साधक है। थानेदार के अनुसार वह एक विचित्र नक्षत्र में जनमा व्यक्ति है। वह लूटपाट करता है। चोरी-डकैती करता है। लेकिन गाय-चोर अपना धंधा नहीं वदलते।

सन्न ने वह हिसाव उलट दिया है।

मानी धोविन दुखी नहीं है। भुवन साँपूई की कृपा से उसके चाँदी के बाले और हार बने हैं। मोहनी मोहन साहार की कृपा से उसने गाय ख़रीदी है।

वावू लोग उसे नहीं छोड़ते; वह ही उन्हें छोड़ देती है, स्वाद वदलने के लिए। भयानक वाचाल है, उसे कोई नहीं छेड़ता। पर अपनी अटूट पूँजी, अपने शरीर के रहते भी वह माँ की शरण में क्यों आयी, यह समझ में नहीं आता। यह वात भी 'माँ का महात्म्य है' कह कर ही प्रचारित हुई।

मानी मंदिर में तीन दिन तक पड़ी रही थी। माँ का प्रसाद दो तो खाये, वरना कुछ भी न खाये। माँ का प्रसाद खाने-भर तक ही उसकी उन्मत्तता सीमित थी। "धूप खाती हूँ, धूना खाती हूँ।" कहते हुए वह पगलाती थी। उसे देखकर विश्वास नहीं होता।

हावू पाल ने यह सारी बातें सुनायीं।

"उसकी उन्मत्तता देखने के लिए कितने लोग शनि-मंगल को आते हैं, पता है?"

"मेरा क्या दोष हुआ, बावू?"

"अरे, दोष-गुण की बात नहीं है। तुम्हारी कुछ व्यवस्था की थी मैंने। भगवान के ऊपर निर्भर रहने वाले क्या मजूरी खटने जाते हैं?"

"घर में जो भूख है।"

"मैं क्या तुझे दोष दे रहा हूँ? अरे, माँ ने तो उँगली के इशारे से वता

दिया कि उसका भक्त कौन है। नहीं तो मानी को क्या अभाव है ? माँ ने उसे पाप के रास्ते से हटा दिया। यह क्या कम बात है ?"

"पर शीतला का तमाम धंधा तो मेरी उपज है।"

"क्या ? ...धंधा ?"

हाबू पाल को एक स्ट्रोक और लगने को हुआ। सात्यकि पंखे से हवा करने लगा। हाबू कुछ देर तक ओह-ओह करता रहा, जैसे सुदाम ने उसे छुरा मार दिया हो। फिर बोला, "यह क्या कुवाक्य बोला तूने ? तू कितना भोगेगा, जानता है ? नवीन की तरह की बातें है इसकी। ठीक है, जाने दो। माँ जो करेंगी, वही होगा। पर तेरे कारण स्वप्न-लाभ हुआ, यह नहीं भूलूँगा। आते-जाते रहना। नौकरी भी करना।"

सुदाम बोला, "चलता हूँ, बाबू ! मजूरी करने के लिए जाना ही दोष बन गया।"

"जो समझो।"

सात्यकि बोला, "भगा दिया था, फिर उसे घुसा लिया।"

हाबू पाल बोला, "तू मेरा बेटा है कि माँ का रक्तस्राव, रे सातू ? वह नवीन का आदमी है। नवीन को नाराज़ करना क्या ठीक है ?"

"तुम क्या खड़े होगे ?"

"उन्होंने तो यही कहा है।"

"कलकत्ता जाना होगा, जानते हो ?"

"माँ यदि चाहेगी तो जाऊँगा।"

उधर सुदाम का दिमाग़ चक्कर खाता रहा। उसके पाँकाल बनने के दिन बीत गये। वह राईमणि को देख कर एक मर्तबा विचलित हो गया। तभी मजूरी में खटने गया। पाँकाल होकर नहीं रहा। कीचड़ लपेट ली, तभी दुर्भाग्य आया।

द्विजपद ने गम्भीरता से सोचा। फिर कहा, "यह भगवान की मार है। आदमी अगर अटल होकर रहे तो भगवान कृपा करते हैं। जब वह चालबाज़ी करता है तो उसकी कृपा ख़त्म हो जाती है। इसीलिए लोग सन्यासी बनते है, जंगल में चले जाते हैं।"

सुदाम इतनी बातें नहीं समझता। उसके हिसाब से भगवान सीधे-

सुदाम भी चला गया।

डेढ़ महीने के वाद, खाने-पीने के ख़र्चे के वाद, वहत्तर रुपये लेकर लौटा तो पता चला कि भात का थाल उसके हाथ से निकल गया है।

सन्न धोवी की पत्नी ने उसकी जगह ले ली है।

मानी धोविन के चेहरे पर सव-कुछ आक्रामक है। जैसा शरीर का ढाँचा वैसी ही आँखें और दाँत। सन्न धोवी साधारणतया जेल में ही रहता है। लूटपाट, चोरी-डकैती, गाय-चोरी—तीनों का सिद्ध साधक है। थानेदार के अनुसार वह एक विचित्र नक्षत्र में जनमा व्यक्ति है। वह लूटपाट करता है। चोरी-डकैती करता है। लेकिन गाय-चोर अपना धंधा नहीं वदलते।

सन्न ने वह हिसाव उलट दिया है।

मानी धोविन दुखी नहीं है। भुवन सांपूई की कृपा से उसके चाँदी के बाले और हार वने हैं। मोहनी मोहन साहार की कृपा से उसने गाय ख़रीदी है।

वावू लोग उसे नहीं छोड़ते; वह ही उन्हें छोड़ देती है, स्वाद वदलने के लिए। भयानक वाचाल है, उसे कोई नहीं छेड़ता। पर अपनी अटूट पूंजी, अपने शरीर के रहते भी वह माँ की शरण में क्यों आयी, यह समझ में नहीं आता। यह वात भी 'माँ का महात्म्य है' कह कर ही प्रचारित हुई।

मानी मंदिर में तीन दिन तक पड़ी रही थी। माँ का प्रसाद दो तो खाये, वरना कुछ भी न खाये। माँ का प्रसाद खाने-भर तक ही उसकी उन्मत्तता सीमित थी। "धूप खाती हूँ, धूना खाती हूँ।" कहते हुए वह पगलाती थी। उसे देखकर विश्वास नहीं होता।

हावू पाल ने यह सारी वातें सुनायीं।

"उसकी उन्मत्तता देखने के लिए कितने लोग शनि-मंगल को आते हैं, पता है?"

"मेरा क्या दोष हुआ, वावू?"

"अरे, दोष-गुण की वात नहीं है। तुम्हारी कुछ व्यवस्था की थी मैंने। भगवान के ऊपर निर्भर रहने वाले क्या मजूरी खटने जाते हैं?"

"घर में जो भूख है।"

"मैं क्या तुझे दोष दे रहा हूं? अरे, माँ ने तो उँगली के इशारे से वता

दिया कि उसका भक्त कौन है। नहीं तो मानी को क्या अभाव है ? माँ ने उसे पाप के रास्ते से हटा दिया। यह क्या कम बात है ?"

"पर शीतला का तमाम धंधा तो मेरी उपज है।"

"क्या ?...धंधा ?"

हाबू पाल को एक स्ट्रोक और लगने को हुआ। सात्यकि पंखे से हवा करने लगा। हाबू कुछ देर तक ओह-ओह करता रहा, जैसे सुदाम ने उसे छुरा मार दिया हो। फिर बोला, "यह क्या कुवाक्य बोला तूने ? तू कितना भोगेगा, जानता है ? नवीन की तरह की बातें है इसकी। ठीक है, जाने दो। माँ जो करेंगी, वही होगा। पर तेरे कारण स्वप्न-लाभ हुआ, यह नहीं भूलूंगा। आते-जाते रहना। नौकरी भी करना।"

सुदाम बोला, "चलता हूँ, बाबू ! मजूरी करने के लिए जाना ही दोष बन गया।"

"जो समझो।"

सात्यकि बोला, "भगा दिया था, फिर उसे घुसा लिया।"

हाबू पाल बोला, "तू मेरा बेटा है कि माँ का रक्तस्राव, रे सातू ? वह नवीन का आदमी है। नवीन को नाराज़ करना क्या ठीक है ?"

"तुम क्या खड़े होगे ?"

"उन्होंने तो यही कहा है।"

"कलकत्ता जाना होगा, जानते हो ?"

"माँ यदि चाहेगी तो जाऊँगा।"

उधर सुदाम का दिमाग़ चक्कर खाता रहा। उसके पाँकाल बनने के दिन बीत गये। वह राईमणि को देख कर एक मर्तबा विचलित हो गया। तभी मजूरी में खटने गया। पाँकाल होकर नहीं रहा। कीचड़ लपेट ली, तभी दुर्भाग्य आया।

द्विजपद ने गम्भीरता से सोचा। फिर कहा, "यह भगवान की मार है। आदमी अगर अटल होकर रहे तो भगवान कृपा करते हैं। जब वह चालबाज़ी करता है तो उसकी कृपा ख़त्म हो जाती है। इसीलिए लोग सन्यासी बनते है, जंगल में चले जाते हैं।"

सुदाम इतनी बातें नहीं समझता। उसके हिसाब से भगवान सीधे-

सुदाम भी चला गया।

डेढ़ महीने के वाद, खाने-पीने के ख़र्चे के वाद, वहत्तर रुपये लेकर लौटा तो पता चला कि भात का थाल उसके हाथ से निकल गया है।

सन्न धोवी की पत्नी ने उसकी जगह ले ली है।

मानी धोविन के चेहरे पर सव-कुछ आक्रामक है। जैसा शरीर का ढाँचा वैसी ही आँखें और दाँत। सन्न धोवी साधारणतया जेल में ही रहता है। लूटपाट, चोरी-डकैती, गाय-चोरी—तीनों का सिद्ध साधक है। थानेदार के अनुसार वह एक विचित्र नक्षत्र में जनमा व्यक्ति है। वह लूटपाट करता है। चोरी-डकैती करता है। लेकिन गाय-चोर अपना धंधा नहीं वदलते।

सन्न ने वह हिसाव उलट दिया है।

मानी धोविन दुखी नहीं है। भुवन साँपूई की कृपा से उसके चाँदी के वाले और हार बने हैं। मोहनी मोहन साहार की कृपा से उसने गाय ख़रीदी है।

वावू लोग उसे नहीं छोड़ते; वह ही उन्हें छोड़ देती है, स्वाद वदलने के लिए। भयानक वाचाल है, उसे कोई नहीं छेड़ता। पर अपनी अटूट पूंजी, अपने शरीर के रहते भी वह माँ की शरण में क्यों आयी, यह समझ में नहीं आता। यह वात भी 'माँ का महात्म्य है' कह कर ही प्रचारित हुई।

मानी मंदिर में तीन दिन तक पड़ी रही थी। माँ का प्रसाद दो तो खाये, वरना कुछ भी न खाये। माँ का प्रसाद खाने-भर तक ही उसकी उन्मत्तता सीमित थी। "धूप खाती हूँ, धूना खाती हूँ।" कहते हुए वह पगलाती थी। उसे देखकर विश्वास नहीं होता।

हावू पाल ने यह सारी वातें सुनायीं।

"उसकी उन्मत्तता देखने के लिए कितने लोग शनि-मंगल को आते हैं; पता है?"

"मेरा क्या दोष हुआ, वावू?"

"अरे, दोष-गुण की वात नहीं है। तुम्हारी कुछ व्यवस्था की थी मैंने। भगवान के ऊपर निर्भर रहने वाले क्या मजूरी खटने जाते हैं?"

"घर में जो भूख है।"

"मैं क्या तुझे दोष दे रहा हूँ? अरे, माँ ने तो उंगली के इशारे से वता

दिया कि उसका भक्त कौन है। नहीं तो मानी को क्या अभाव है ? माँ ने उसे पाप के रास्ते से हटा दिया। यह क्या कम बात है ?"

"पर शीतला का तमाम धंधा तो मेरी उपज है।"

"क्या ? ...धंधा ?"

हाबू पाल को एक स्ट्रोक और लगने को हुआ। सात्यकि पंखे से हवा करने लगा। हाबू कुछ देर तक ओह-ओह करता रहा, जैसे सुदाम ने उसे छुरा मार दिया हो। फिर बोला, "यह क्या कुवाक्य बोला तूने ? तू कितना भोगेगा, जानता है ? नवीन की तरह की बातें है इसकी। ठीक है, जाने दो। माँ जो करेंगी, वही होगा। पर तेरे कारण स्वप्न-लाभ हुआ, यह नहीं भूलूंगा। आते-जाते रहना। नौकरी भी करना।"

सुदाम बोला, "चलता हूँ, बाबू ! मजूरी करने के लिए जाना ही दोष बन गया।"

"जो समझो।"

सात्यकि बोला, "भगा दिया था, फिर उसे घुसा लिया।"

हाबू पाल बोला, "तू मेरा बेटा है कि माँ का रक्तस्राव, रे सातू ? वह नवीन का आदमी है। नवीन को नाराज़ करना क्या ठीक है ?"

"तुम क्या खड़े होगे ?"

"उन्होंने तो यही कहा है।"

"कलकत्ता जाना होगा, जानते हो ?"

"माँ यदि चाहेगी तो जाऊँगा।"

उधर सुदाम का दिमाग़ चक्कर खाता रहा। उसके पाँकाल बनने के दिन बीत गये। वह राईमणि को देख कर एक मर्तबा विचलित हो गया। तभी मजूरी में खटने गया। पाँकाल होकर नहीं रहा। कीचड़ लपेट ली, तभी दुर्भाग्य आया।

द्विजपद ने गम्भीरता से सोचा। फिर कहा, "यह भगवान की मार है। आदमी अगर अटल होकर रहे तो भगवान कृपा करते हैं। जब वह चालबाजी करता है तो उसकी कृपा ख़त्म हो जाती है। इसीलिए लोग सन्यासी बनते है, जंगल में चले जाते हैं।"

सुदाम इतनी बातें नहीं समझता। उसके हिसाब से भगवान सीधे-

सादे लोगों से इतनी चाल-भरा पेंचदार खेल क्यों खेलते हैं ?

नवीन बोला, "बेकार की बातें छोड़ो। ठीक किया। मजूरी करने गये। शीतला माँ ग़रीब को अन्न देगी ? कभी दिया है ? मानी की उन्मत्तता देखने के लिए लोग नहीं जुटेंगे ? वह युवती है। देवी चढ़ने पर वह जो कपड़े नोचकर फेंकती है, उसे देखने में लोगों को कितना मज़ा आता है ! तुम्हारे पास क्या है कि भीड़ जुटाओगे ? चेहरा तो घुन-लगे बाँस की तरह है। कई बच्चों के बाप हो। तुम अगर नंगे भी नाचो तो लोग तुम्हें नहीं देखेंगे।"

"यह तो अन्याय हुआ, बाबू !"

"अन्याय कैसा ?"

"मेरी बात से ही तो सब-कुछ शुरू हुआ। फिर मुझे ही भगा दिया।"

नवीन मधुर बातें करना नहीं जानता। फिर भी वह सुदाम के प्रति बड़ा ममत्व अनुभव करता है।

"चलो, चाय पीओगे ?"

"तुम पिलवाओगे ?"

"हाँ।"

चाय और डंडा-बिस्कुट लेकर नवीन सुदाम को समझाता रहा। नवीन के दल के समर्थन से हाबू पाल का निर्वाचन-युद्ध में उतरना निश्चित है। खगेन धाड़ा, नारायण पांजा—सभी ने घोर विरोध किया है। फलतः नवीन अब अकेला नहीं है। उसका मन पहले से शांत है।

सुदाम को देखकर उसे कष्ट होता है। अपनी ज़मीन खोकर वह हाबू पर निर्भर हो गया। तभी से उसका स्वभाव बदल गया है। पहले वह नहाये बग़ैर घर से नहीं निकलता था। हाबू उससे तीन आदमियों का काम करवाता था। बुद्धू था वह।

"तुम्हारी ज़मीन थी पहले ?"

"एक बीघा। बागान भी था बड़ा-सा।"

"तुम्हारी गृहस्थी चल जाती थी ?"

"हाँ। हमने कभी उपवास नहीं किया।"

"हाबू से कितना उधार लिया था ?"

"एक सौ रुपया।"

"रुपये लौटा नहीं पाये ?"

"ना भाई !"

"तो हावू ने दया की ?"

"कभी नहीं की।"

"यह क्या हिसाब था ? अन्याय किया था उसने ?"

"अन्याय नहीं है कि एक सौ रुपये तीन महीने के बाद एक हजार किस हिसाब से हो गया ?"

"हावू के हिसाब से ! उसके बाद ही राजू मर कर बचा था ?"

"टाईफ़ाइड हुआ था। तुम अस्पताल ले गये थे।"

"तब क्या रुपये दिये थे ?"

"नहीं। उधार भी नहीं दिये। कहने लगा कि बंधक रखने के लिए कुछ भी नहीं है तो उधार कैसे दूँ ?"

"यह अन्याय नहीं है ?"

"है !"

"सुदाम, हावू ने अन्याय कब नहीं किया ? हमेशा से करता आ रहा है, आज भी कर रहा है।"

"इस तरह मैंने कभी नहीं समझा।"

"समझने की कोशिश नहीं की कभी। अन्याय तो वह फिर-फिर करेगा।"

"इसका कोई प्रतिकार नहीं है ?"

"नहीं। रुपये वाले लोग हैं, अन्याय कर सकते हैं। कोई विरोध नहीं कर सकता।"

"हमने भी वही किया। तभी मजूरी करने गया। जो होगा, माँ करेगी, यह सोचकर बैठा तो नहीं रहा।"

"वह सब हावू की बातें हैं। सब झूठ। जितने लोग हैं, जो कुछ करें, सब माँ के भरोसे करें। माँ ही उन्हें खिलायेगी। ये बातें हावू बोल सकता है। उसने माँ की बदौलत धन कमाया। तुम्हें क्या मिला ? एक थाली भात ! हाट-बाज़ार में घूमे, भूत चढ़ाकर नाचे, खूब खटे। किया या नहीं

यह सब ?"

"वही तो सोच रहा हूँ मैं ।"

"तब ?"

"पांकाल ही बनकर रहता अगर ?"

"उस तरह नहीं रह सकते, सुदाम ! घोर स्वार्थी ही उस तरह रह सकते हैं ।"

"वे क्या साधू-संन्यासी होते हैं ?"

"वे बदजात होते हैं ।"

"नहीं, अच्छे लोग भी तो होते हैं । तुम तो अच्छे हो । कितने लोगों का कितना उपकार किया है तुमने ।"

"पांकाल होकर क्या मैं कर सकता था ?"

"नहीं ।"

सुदाम को ठेस लगी । पांकाल-पथ उलटा है । उलटा है उनका दर्शन । वह पहले क्यों नहीं समझा यह सब ?

नवीन बोला, "अब कुछ मत सोचो । इलेक्शन आ रहे हैं । जीतेंगे, यह तो निश्चित है। तुम्हारी कुछ व्यवस्था करूँगा। सालों से तुम्हारे जैसे लोग भिखारी बनते आ रहे हैं। अब जो कर सकते हो करो, बचो।"

नवीन तो खलास हो गया । सुदाम क्या करे ? हरिरामपुर में शीतला के सहारे के बगैर कौन-सा काम रह गया है ? राईमणि बोली, "पांच रुपये में फूल-बेल-पत्र-दूब खरीदो । फिर शत्तर ले चलो ।"

"डर लगता है । शत्तर मैं नहीं पहचानता ।"

"हम तो जाते हैं ।"

"देखें, यहीं कुछ मिल जाये । जुगल के पास जायेंगे । अच्छी बात है ।"

जुगल ने रानी के बारे में जो प्रस्ताव रखा था, सुदाम ने वह अभी तक नहीं बताया था । अब बताया ।

राईमणि ने सुनकर कहा, "सुनने में तो अच्छा लगता है । लेकिन बड़ी को रखकर छोटी की शादी कैसे करूँ ?"

"तब उसके लिए कोई वर ढूंढूं ।"

"दोनों की एक साथ करोगे ?"

'इसमें ख़रावी क्या है ?"

"कुछ न करते हुए कुछ ख़र्चा तो करना पड़ेगा।"

"घर बेच दूँगा।"

"फिर उसके वाद ?"

"अरे तुम हो, मैं हूँ और राजू—बस। शत्तर चले जायेंगे। तुम्हारे रहते मुझे डर नहीं लगेगा। मैं...पहले ऐसा कहाँ था ? वागान हाथ से चला गया, मैं अमानुष हो गया।"

"देखो, मैं भी तो यही कहती हूँ। मन को ठेस पहुँचाने से क्या लाभ है ? राधी अभी चौदह की हुई है और रानी वारह की।"

"तब राजू ?"

"सोलह का।"

"मैं कितने वरस का हुआ ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"उनकी बातें तो जानती हो ?"

"अपना शरीर देखो। अरे, उनकी उम्र का हिसाव नवीन वावू ने लगाया था।"

इसके वाद सुदाम जुगल के साथ मजूरी पर चला गया। वहीं से उसे माकालडाँगा भी जाना पड़ा और नित्यपद के साथ भी मुलाक़ात वहीं हुई। नित्यपद ने उसे मूड़ी-चाय पिलायी। घर की मरम्मत करा लेने के बाद से नित्यपद के चेहरे पर एक आदर्श भाव रहता है। उसने अपनी लड़की की शादी विहार में की है। वह गर्वान्वित भी है।

सुदाम से बोला, "लोग तो हज़ार बातें करते हैं। क्या वे मुझे खाने को देंगे ? अगर वे वुरे लोग होते तो मुझे पैसे देकर, ख़र्च करके, लड़की को सजने-धजने के लिए इतने पैसा क्यों देते ? अपना पता दे गये हैं। पत्र भी भेजेंगे।"

"लड़का क्या करता है ?"

"दुकान है।"

जुगल वाहर निकल कर वोला, "उसने खुद ही उसे नरक में भेजा है।

दूसरों को भी उकसाता है। उनसे इसे बँधे रुपये मिलते हैं।"

"मैं उसकी चाल समझता हूँ।"

"नहीं, नहीं! जनम, मृत्यु और शादी—तीनों भगवान कराता है। तुम ऐसा मत करना।"

"हाँ, ऐसा नहीं करूँगा। पर लड़कियों की शादी तो करनी ही होगी। घर-दुआर तो स्टेशन के पास ही हैं। भुवन बाबू ने मकान ख़रीदना चाहा था। अब सब बेच-बाच कर दोनों को पार लगाकर चला आऊँगा।"

"हाँ, सुनी तो हैं, बहुत-सी बातें। नवीन बाबू जब मंत्री होंगे, सभी को घर देंगे।"

"यह हमारे भाग्य में कहाँ? मकान हाबू पाल तो देने से रहा। मैं माँगूँगा भी नहीं।"

"देखता हूँ, एक कबाड़ी लड़का है। वह यदि राज़ी हो जाये शायद।"

"देखो।"

पर वे जो चाहते थे, वह हुआ नहीं। इमरजेंसी के बाद से ही उन लोगों का गाँव-गाँव आना-जाना लगा रहता था। उनके पैर में नागरा जूते और चेहरा चमकता हुआ। पाकेट में हरे नोट। वे ज़िले-भर में एक ही तरह से काम करते थे।

लड़की ग़रीब घर की।

सब ख़र्च वर-पक्ष का और साथ में मोटी रक़म।

शादी के बाद उनके देश में बहू-भात।

एक पता देकर वे चले जाते थे।

'मोटी रक़म' के बारे में लोग अपने तरीक़े से सोचते थे। जो इस व्यापार को शादी कहते थे, वे तीन सौ से सात सौ रुपये पाकर चुप हो जाते थे। जो समझते थे यह धंधा है, वे ज़्यादा रुपये वसूलते थे।

उनके दिये पतों से चिट्ठियाँ आती भी हैं या नहीं; यही समझना या इसका पता करना मुश्किल था। कोई-कोई पत्र लिखता था, लेकिन जवाब नहीं आते थे।

तब दो-चार दिन माँ रोती। उसके बाद मन को समझाती।

लड़की का नाम फेली रख दिया
यम को दिया या ग़ायब कर दिया,
जमाई को दिया या
बस खो दिया ।।

कईयों के मतानुसार यह घोर अन्याय हो रहा है। फिर कोई कहता, "लड़की है ! चलो, सद्गति तो हुई।"

राधी का रंग ज़रा मद्धिम है। फिर दुख की छाया भी चेहरे पर है। रानी तो उससे छोटी है। राईमणि जब भुवन साँपुई के हाथ से चावल लिया करती थी तभी किसी दिन शायद राधी पर उसकी नज़र पड़ी थी। ये तो घूमती हैं हाट में, आढ़त पर, गोले में।

इस गाँव में खुल्लमखुला मैदान में उतरना संभव नही है। क्योंकि लोग जागरूक हैं। फिर भी शीतला के मंदिर को केन्द्रित करके लोग घूमते रहते हैं।

दो लोग मानी धोबिन के घर भी गये थे।

"क्यों रे मानी, तू तो अच्छी औरत बन गयी है। भुवन बाबू को भुला दिया, मोहिनी बाबू को भगा दिया। चक्कर क्या है?"

"क्यों, क्या हुआ?"

"सुना है, शराबख़ाना खोल रही है?"

"मैं नहीं, वो खोल रहे हैं।"

"अरे, सन्न की क्या औक़ात है ! यह तो तेरा ही काम है।"

"मैं धर्म के पथ पर चल रही हूँ। वह भी ठीक हो जायेंगे। जेल से निकलने के बाद फिर धंधा शुरू करेगा। इसलिए दुकान करके बैठे, यही ठीक रहेगा। क्यों, क्या बात है?"

"हमारे बहुत पैसे खाये हैं तूने।"

"सब भूल जाओ।"

"अरे मानी, तूने तीन-चार लड़कियों की ख़बर दी थी। खूब रुपये भी ऐंठे। किसी को तेरे नाम का पता नहीं चला। अब तू अच्छी बन गयी।"

"जो हुआ सो हुआ। उस पाप में अब मैं नहीं हूँ।"

"कहने से क्या होता है? पाँच दिन शराब बेचेगी। मंगल-शनि

को देवी चढ़ेगी। पर थोड़ा हमारा काम तो करना ही होगा।"

"क्या काम है, बोलो ? तुम्हारी बातें पाप की बातें हैं। कह तो रही हूँ कि मन्दिर का प्रसाद खाती हूँ, वहीं रहती हूँ। पाप-पथ छोड़ चुकी हूँ।"

"अरे ! यह तो अच्छा नेक काम है।"

"मर तो सही हरामी !"

"तब सुनो।"

सुनते-सुनते मानी ने सिर झुका लिया। 'नहीं-नहीं' कहती रही। लेकिन उसे पता था कि उसे इनका काम करना ही होगा। वह यह भी जानती थी कि वह बस 'नहीं-नहीं' कह सकती है। उसे बड़ा ग्लानि-बोध हो रहा था। सन्न धोबी के छूटने के बाद से इस बार उसके दिन फिरे हैं। अब बिना लाइसेंस वाली शराबभट्टी चलती रहेगी। अधर्म बहुत किया है। अब धर्म भी करना होगा।

सन्न बोलता है, "तेरा मिज़ाज तो बड़ा नरम हो गया है, रे ! पहले तो तू ऐसी नहीं थी।"

मानी ने जवाब दिया, "केंकड़ा-मांस नहीं खाती, शराब नहीं पीती। दूसरे नरक में भी नहीं रहती। मज़ाक किससे कैसे करूँ ?"

"मैं जानता था, तू पूरी सती-नारी है।"

"तो देख, तेरे कारबार में मैं भागीदार नहीं। हफ़्ते में पाँच दिन संभाल लूंगी। शनि-मंगल नहीं। शीतला बड़ी क्रोधी देवी है।"

आज शनि या मगल नहीं है। आज शुक्रवार है, पर शुक्र भी तो संतोषी माता का दिन है। आजकल इस इलाक़े में शनि और मंगल शीतला के हैं, रविवार बाबा सिद्धनाथ का, सोमवार बाबा बटेश्वर का। बुधवार माँ हड़ाई-चंडी का, या बीफे-छापा भोला स्वामी का। शुक्रवार संतोषी माँ का है। इस इलाक़े के बहुत कम लोग स्वतंत्र है। सभी किसी-न-किसी की प्रजा हैं।

शुक्रवार को इनके साथ जो बातें हुई, संतोषी माता को बुरी नहीं लगेंगी। मानी ने सन्न से एक बात पूछी—वह भुवन बाबू के साथ रहे या मोहिनी बाबू के ? पर वह जानती है कि सन्न पूरा ज्ञानी है। बहुत बार

को देवी चढ़ेगी। पर थोड़ा हमारा काम तो करना ही हो॰

"क्या काम है, बोलो ? तुम्हारी बातें पाप की बातें
हूँ कि मन्दिर का प्रसाद खाती हूँ, वहीं रहती हूँ। पा
हूँ।"

"अरे ! यह तो अच्छा नेक काम है।"

"मर तो सही हरामी !"

"तब सुनो।"

सुनते-सुनते मानी ने सिर झुका लिया। 'नहीं-नहीं' क
उसे पता था कि उसे इनका काम करना ही होगा। वह य
कि वह बस 'नहीं-नहीं' कह सकती है। उसे बड़ा ग्लानि-
सन्न धोबी के छूटने के बाद से इस बार उसके दिन फि
लाइसेंस वाली शराबभट्टी चलती रहेगी। अधर्म बहुत
भी करना होगा।

सन्न बोलता है, "तेरा मिज़ाज तो बड़ा नरम हो ग
तू ऐसी नहीं थी।"

मानी ने जवाब दिया, "केंकड़ा-मांस नहीं खाती,
दूसरे नरक में भी नहीं रहती। मज़ाक किससे कैसे क

"मैं जानता था, तू पूरी सती-नारी है।"

"तो देख, तेरे कारबार में मैं भागीदार नहीं।
संभाल लूंगी। शनि-मंगल नहीं। शीतला बड़ी क्रोधी दे

आज शनि या मगल नहीं है। आज शुक्रवार है, प
माता का दिन है। आजकल इस इलाक़े में शनि और
रविवार बाबा सिद्धनाथ का, सोमवार बाबा ब
माँ हड़ाई-चंडी का, या बीफे-छापा भोला स्वामी का
का है। इस इलाक़े के बहुत कम लोग स्वतंत्र है। स
प्रजा हैं।

शुक्रवार को इनके साथ जो बातें हुईं, संतोषी
लगेंगी। मानी ने सन्न से एक बात पूछी—वह भुव
मोहिनी बाबू के ? पर वह जानती है कि सन्न पूरा

बेटी ! मेरी बेटी !' कह कर स्नेह से बुलाता है। वह यहाँ क्यों आयी है ?

"क्या बात है ? चींटी के घर हाथी का आगमन !"

"एक बात है।"

बड़े सुनहरे जाल जैसी बातें मानी ने बुनीं, "मेरे पास बहुतेरे लोग आते हैं। डायमंड हारबर के दुग्गोपद मंडल अपने लड़के के लिए बहू ढूंढ़ रहे हैं। लड़का साइकिल की दुकान करता है। शहर में रहता है। दुग्गोपद ज़मीन-जायदाद देखते हैं। इकलौता लड़का है। दुग्गोपद ने तीन लड़कियाँ खो दी हैं। वे ग़रीब घर की लड़की चाहते हैं, जो घर की बेटी बनकर रहे। शादी के लिए परेशानी की बात नहीं। दुग्गोपद तमाम ख़र्चा देंगे। लड़की को चाँदी के गहने देंगे।"

सुदाम बोला, "क्यों देंगे ?"

"क्यों देंगे का मतलब ?"

"कोई देता है क्या ?"

"वह क्या देगा ? लड़के की धर्म-माँ भी है। वह क्या कम हैं ? आटा-चक्की, कोल्हू। क्या नहीं है ? वे ही देंगी।"

"वे राधी से ही क्यों...?"

"मेरे पास लड़की की बात करने आये थे। मैंने तुम्हारी बच्ची की बात नहीं कही। तुम्हें बेदख़ल किया है, सो मेरे मन में ग्लानि-बोध था, इसलिए।"

इसी तरह मानी ने उन्हें पटा लिया। सुदाम भी मन-ही-मन कह रहा था, 'अच्छा ही हुआ, यह बिहारी का लड़का तो नहीं है।'

नवीन से बातचीत नहीं कर पाया। नवीन इलेक्शन के पचड़े में, हाबू के विरोध में, एक अंतर्दलीय विरोध में व्यस्त था।

द्विजपद बोला, "सुनने में तो अच्छा लगता है। खबर करो।"

जुगल ने कहा था, "मेरी बेटी के पेट में घाव है। शहर में दिखाना होगा। कलकत्ता से आपरेशन करा लाऊँ। फिर देखूंगा।"

राईमणि बोली, "पता नहीं, छुट्टी कब होगी ? तब तक क्या शादी रुकी रहेगी ?"

राईमणि शांत, परिश्रमी और समझदार औरत थी। अचानक ही उसकी मति भ्रष्ट हो उठी।

कारण, प्रस्तावित वर का सुन्दर चेहरा और दुग्गोपद की शांत और मीठी बातें। नाक के पास एक तिल को छोड़कर, वर के चेहरे में कोई दोष नहीं था।

दुग्गोपद लड़की देख कर बोला, "इसके आने पर तो यही लगेगा कि घर में...।"

राईमणि ने भर-नज़र वर को देखा। राधी के भाग्य ऐसे? किसने सोचा था? ऊपर वाला सबका हिस्सा बाँट कर भेजता है। पर, राधी को ऐसे वर के हाथ सौंपने के बाद रानी को वह कैसे घटिया वर के हाथों सौंपेगी?

राधी के भावी ससुर ने सुना दिया, "सावन में ही शादी होगी।"

"महीना पूरे होने में सिर्फ़ चार दिन हैं। शादी परसों ही होगी।"

"परसों ही हो।"

"इतनी जल्दी?"

"फिर भादों आ जायेगा न?

गाँव के लोगों ने कहा, "शादी जब तय हो ही गयी है तो होने दो। शुभस्य शीघ्रम्।"

हरिरामपुर में राधी की शादी की चर्चाएँ शुरू हुईं। ससुर ने हाथों-हाथ तीन सौ रुपये गिन दिये। इसी में सब-कुछ कर लें। सिर्फ़ मिठाई भी चलेगी।

सुदाम इतने रुपये मिलने पर हतप्रभ रह गया। उसकी आँखों में आँसू उतर आये।

वह राईमणि से बोला, "कितने दिन हो गये रुपये छुए! राधी के कल्याणकारी हाथों से नोट छुए। अब भात-मछली का जुगाड़ करता हूँ।"

"करो।"

"बराती सिर्फ़ पाँच हैं। गाँव में से किस-किस को बुलाऊँ? समय तो कम है।" तब भी कुछ तो हुआ। सुदाम के टूटे घर में पेट्रोमेक्स जला। उनकी दी हुई रौलेक्स की बनारसी साड़ी और गहने पहन कर राधी पीढ़े

पर बैठी।

दूसरे दिन सवेरे विदाई हुई। सब सपने की तरह ही हुआ। राजू साथ गया। शाम को राजू लौटा। डायमंड हारबर में बहुत बड़ा घर है। घर के भीतर वे गये थे।

"धर्म-माँ को देखा ?"

"वे कलकत्ते गयी हैं।"

"ठीक है, बहू-भात पर जाऊँगा। देख आऊँगा।"

"वह कलकत्ते में होगी। पता दे दिया है। वहीं बहू-भात होगा।"

"हम जा सकेंगे ?"

"क्यों नहीं ? बालीगंज स्टेशन उतर कर। वहीं तो धर्म-माँ का घर है। वर के चचेरे भाई ने कहा कि यदि हम दो बज के दस की गाड़ी में बैठें तो बालीगंज स्टेशन पर उससे मुलाक़ात हो जायेगी।"

"राधा खुश थी ?"

"हाँ-हाँ, खूब !"

राईमणि के हृदय में एक छवि जैसी खिंच गयी। किसी अनजाने घर में राधी बैठी है, सिर्फ़ हँस रही है।

'राधी' छवि होकर रह गयी।

क्यों ? कागज पर लिखा पता एक स्कूल का था। स्कूल देख कर राईमणि धक से रह गयी। सर्वनाश की आशंका से वह रो उठी।

दुःस्वप्न ! कौन-सा दुःस्वप्न था ! शहर से वे लौट कर घर आये। सारी रात राईमणि रोती रही। सवेरे सुदाम और राजू डायमंड हारबर गये। घर पर ताला ? मुहल्ले के लोग कुछ नहीं बता पाये। एक बूढ़े चने वाले ने कहा, "थाने में जाओ, बच्चा ! तुम ठगे गये हो।"

एक युवक बोला "लड़का देखने में कैसा था ?"

सुदाम ने दुर्गापद और उसके पुत्र निरापद का विवरण दिया। नाक के पास 'मस्से' का ज़िक्र सुनते ही भीड़ छँटनी शुरू हो गयी।

युवक बोला, "तब लौट जाओ।"

"क्यों, भाई ?"

"यह जिसने किया है, उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं। तुम्हारी

लड़की को शामिल करें तो उसने पिछले कई सालों में तीसेक शादियाँ की हैं। अब पता नहीं, कहाँ गया है ? डायमंड हारबर में देखकर ही समझ गया था कि वह किसी धंधे में आया है। पहले चकला चलाता था। अब शादी करता है।"

"उसके साथ बाप...?"

"वह तो भीम है। महा दगाबाज़ है। वही लालू का बाप न ? अरे, लालू का बाप तो रिक्शा चलाता है। लड़के के साथ उसका कोई रिश्ता नहीं।"

थाने में भी यही बात सुनी गयी।

थानेदार ने कहा, "जाओ ! गाँव में रहते हो, लेकिन लालू की गिरफ़्त में कैसे आये ?"

"लड़की को दिला दो, बाबू !"

"यह संभव नहीं। हरामज़ादा यही कारबार चला रहा है। लालू तो भाग गया है। और उसे मुहरा बना कर जो लोग काम करवा रहे हैं, वे कहाँ भाग गये लड़की लेकर, कौन जाने ? तुम भी तो चुगद हो ! रुपये देते हैं। कपड़ा-गहने देते हैं। क्या स्वर्ग का राज्य चल रहा है ? थोड़ा संदेह भी नहीं होता ?"

थानेदार कहते रहे, पर यह भी सोचते रहे कि इन भूखे-नंगों के मन में संदेह नहीं होता। अभी भी 'बुरे तो हैं, पर अच्छे भी तो हैं' का सिद्धांत इनके मन में काम करता है। वे उदास होकर बोले, "डायरी लिखा जाओ।"

थानेदार और किरानी से बातें करने के बाद सुदाम और राईमणि के सामने राधी की स्थिति स्पष्ट हो गयी।

"यही चल रहा है।"

"हर ज़िले में यही कारबार है।"

"ग़रीबों को देखते ही...।"

"अरे नहीं। इनके दलाल तो गाँव में ही बैठे हैं, वरना खबरें कहाँ से मिलती हैं ?"

"दलाल रुपये खाता है। जाली दूल्हा रुपये खाता है। लड़की के बाप

को रुपये देते हैं।"

"काफ़ी पूँजी लगती है। ही...ही...ही...!"

"लागत जैसी, आमदनी भी वैसी है।"

"कहाँ ले जाते हैं ?"

"कलकत्ता में कम रखते हैं। दिल्ली, पंजाब, कानपुर तक यह कारबार फैला हुआ है।"

बड़े त्रस्त होकर सुदाम सपरिवार वापस गाँव आया। उस दिन वह सोल मछली-चावल ख़रीद रहा था...राईमणि और रानी दालान लीप रहे थे।

"जाओ, मानी को पकड़ो। उससे पूछो !"

सुदाम कुछ नहीं करता। चुप है। नवीन आया, चीख़ा, सुदाम को कोई फ़र्क नहीं पड़ा। वह बीड़ी बाँध रहा है, बाँधे जा रहा है।

"मेरे रहते ऐसा नहीं हो पाता।"

"तुम तो थे नही।"

"किसी से भी पूछा नहीं ?"

"तुम नहीं थे, द्विज-दा भी नहीं थे, किस से पूछता ?"

"रानी घर पर ही है ?"

"उन्हें अब कहीं नहीं जाने देता। चरन नारियल के पत्ते दे जाता है। वे पत्ते काटती हैं, छाँटती हैं। दस बोझ बाँधने पर दो रुपये बनते हैं।"

"राजू ?"

"यहीं है। सबको आँखों के सामने रखा है।"

"थाने में जाऊँ ? पूछूँ उनसे ? बग़ैर हंगामे के आजकल कुछ नहीं होता।"

सुदाम ने फिर भी आँखें ऊपर नहीं उठायीं। निर्लिप्त स्वर में बोला, "थाना क्या करेगा, दादा ? उनसे कुछ नहीं होगा।"

नवीन आश्चर्यचकित हो गया। सुदाम और इस तरह निर्विकार ! सुदाम क्या सचमुच साधक, योगी, पागल या पाँकाल हो गया है ? लड़की खोने के बाद भी इस तरह अविचल है ? कुछ भी उसे नहीं छूता जैसे। नवीन बड़ा परेशान हो उठा।

यह सुदाम कितना स्थिर है, कितना निर्विकार ! इस क्लीव, रोगी शरीर को लेकर भी। यह क्या पाँकाल-दर्शन का फल है ?

नवीन आंदोलन, जनमत, डेपुशटेन, प्रतिवाद ही जानता है।

वह बोला, "थाने का काम है, देखता हूँ।"

सुदाम हँसा। एक बच्चे को समझाने की तरह शांत स्वर में बोला, "भाई ! ये लोग दलाल रखते हैं गाँव में। दलाल पता बताते हैं। तब जाली, दो नम्बरी वर शादी करता है। उसके बाद लड़की उठा ले जाते हैं, पता नहीं कहाँ ? ऐसा चल रहा है।"

"यह तो बंगाली लड़का था।"

"ऐसे लोग बहुत चालू पुरज़े होते हैं। तभी तो बंगाली लड़का लेकर आये थे। दूसरी जगहों पर उसी देस के लड़के शादी करते हैं। धंधे का यही नियम है।"

"जाने से कोई लाभ नहीं ?"

"दादा, तुम हमेशा ठीक काम करते आये हो। पर इनसे पार पाना तुम्हारे लिए संभव नहीं।"

"वह मानी धोबिन ?"

"तुम जाओ भाई, अपना काम करो।"

नवीन बाहर निकला। उसी समय अचानक सुदाम का स्वर सुना। पूर्ण ममत्व और प्रेम से भरे स्वर में जैसे सुदाम बोला हो—

"राधी ! राधी ! मेरी राधीका रे !"

"राधी ! राधी ! मेरी राधीका रे !" यह आवाज़ जैसे बिछ गयी, फैल गयी, गूँजती चली गयी सुदाम के जीर्ण घर में, दालान में, कालिख लगी भात की हाँडी में। खीर पकाने की देगची में, मनसा पेड़ में, सहिजन के पेड़ पर लटके मैले गमछे में। स—ब कहीं। नवीन के हृदय को कोंच कर वह आवाज़ जैसे हवा में गुम हो गयी।

नवीन का अंतर काँप उठा। ऐसे सुदाम ने किसे बुलाया ? राधी को ? राधी है कहाँ ?

इस आवाज़ ने नवीन को झकझोर दिया। उसे लगा, सुदाम के प्रति उसका कुछ कर्त्तव्य है।

कुछ करना चाहिए।

गाँव के सभी लोग सुदाम में परिवर्तन देख रहे हैं।

द्विजपद बोला, "मानी को तो हम कभी नहीं छोड़ते। पर जिसके साथ घटना घटी है, वही कुछ नहीं बोलता तो हम क्या करें ?"

"तो चुप रहें ?"

"क्या करें ?"

अब पचड़ा और जटिल हो गया। हाबू पाल ने घटना के बाद कहा था, "इसमें मानी का कोई दोष नहीं था। उसने तो अच्छा ही सोचा था। खोजबीन तो सुदाम को करनी चाहिए थी। अब बातें मत करो। सुदाम हमेशा से हमारे यहाँ खटता रहा है। ऐसी घटना के समय उसे मेरे पास आना चाहिए था। आया क्यों नहीं ? मुझसे यदि पूछा होता तो खोजबीन मैं करवा देता। अब एक अबोध बच्ची को दोष दे रहे हो ?"

खगेन धाड़ा और नारायण पांजा बोले, "मानी ! देवी ? अरे भुवन से सब पता चलवा लिया है। उसके पास मानी गयी थी राधी को बेचने का मशवरा करने। भुवन ने उसे घास नहीं डाली।"

"यह सब बेकार बातें हैं।"

"हमने तुम्हें खड़ा कराया है। तुम इस समय मानी के घर की दारू की बेनामी भट्ठी क्यों खोल रहे हो ? इसी में मरोगे।"

"मैंने खोली है ?"

"मानी ने बोर्ड लगाया है बाहर, देखा नहीं ?"

"कहाँ ?"

"अपने घर के बाहर—'माँ शीतला सुरालय।' लाइसेंस कहाँ से मारा ?"

"छि: छि: ! माँ के नाम पर भट्ठी खोलना !"

हाबू पाल जानता है कि इस इलाक़े के काफ़ी लोगों के विरोध के बावजूद उसे इलेक्शन के लिए खड़ा कराया गया है। अब इस चक्कर में बड़ी बदनामी होगी।

वह सभी को किस तरह संभाले ? उसकी समझ में नहीं आता। नारायण पाँजा उसे गहरी चोट दे गया।

"सुदाम का खून चूसा। उसका खाना छीन लिया। इसके बाद इस रंडी मानी को फ़िट करके उसकी लड़की ग़ायब करा दी।"

"मैंने करायी ? क्या कहते हो तुम ?"

"यही हुआ है।"

खगेन हरिरामपुर के चंद्रकांत माध्यमिक विद्यालय का गणित-शिक्षक है। उसके हाथों का कर्ण-नुंचन किसने न सहा हो, ऐसे छात्र विरल हैं। वह हिसाब बैठाकर हाबू पाल को समझा गया कि उसकी स्थिति अब क्या है।

"मानी एक बदनाम औरत है और सन्त एक दागी व्यक्ति। मानी ने जो किया वह तो तुम्हारे जैसे घरों में होता रहता है, अकसर चलता रहता है।"

"मेरे घर ?"

"अहा ! भुवन, मोहिनी, तुम—सब एक श्रेणी के लोग हो। एक तुम्हारे नेक होने से क्या हुआ ? तुम्हारे इस गाँव में धनियों का प्रभुत्व है।"

"माँ शीतला जानती है, मैं सच्चरित्र हूँ।"

"बको मत, बेमतलब। सुनो।"

"बोलो।"

"मानी रात को जो करती थी...। सबके सामने आकर नाचने का साहस उसमें नहीं था। तुमने उसे मंदिर में फ़िट कराया। उसके बाद भट्ठी बिठाकर चारों तरफ़ लुच्चे-गुंडे बिठा दिये हैं। अरे, इसी से तो उसने इतना बड़ा कांड कर डाला।"

नारायण पांजा अच्छी तरह से नस सूंघता है। वह नाक सिकोड़ कर बोला, "अपने पैर में भी कुल्हाड़ी मार ली है। तुम्हारे लिए तो यह कहना भी कठिन है कि आदमी मत देखिये, पार्टी को वोट दीजिये।"

"वोट-सपोर्ट कर रही है क्या ?"

"कुछ भी समझो।"

हाबू घबरा गया। जनमत अगर विपक्ष में हो गया तो बड़ी मुश्किल होगी। सात्यकि को कुरेदा, "इतने चमचे जुटाये। उनकी बातें सुनकर दारू का कारबार शुरू किया। अब इसकी ज़िम्मेदारी कौन लेगा ? इलेक्शन

में खड़े होने में तो चोर घुस गया है।"

"तुमने ही तो साला सपना देखा था।"

"सपने से क्या हुआ ?"

"सपने के कारण मंदिर बना। मंदिर के चारों तरफ़ कारबार चला। कितने लोग जुटे !"

"अब मैं क्या करूँ ?"

"इलेक्शन में खड़े ही क्यों हो रहे हो ?"

"कितनों का उपकार कर सकूँगा, समझे ?"

"तुम तो बेकार के आदमी हो। अरे, जीतने पर आदमी क्या करता है ? अपने लोगों को नौकरी, लाइसेंस, परमिट, कंट्रैक्टरी दिलाकर विभिन्न तरह से मदद करता है। तुम्हारा मेरे सिवा है ही कौन ? किस-किस की मदद करोगे ? इस पचड़े में क्यों कूद रहे हो ?"

"अरे अभागे, न खड़े होने पर नवीन लोग जीतेंगे। तब क्या होगा ? सब मुझे ही पकड़ेंगे। माँ के नाम सर्वस्व करने के बाद भी बचूंगा नहीं। ठीक है। तू पहले मानी का वोट हटाने की व्यवस्था कर।"

हाबू चाहता है, सुदाम आये।

सुदाम नहीं आता।

हाबू चाहता है, कि सपने में शीतला आये।

सपने में आते हैं नवीन, खगेन, नारायण, मानी।

हाबू वेदम हो गया। एक दिन सवेरे उठा। सबको बुलाकर बोला, "भगवान जानते हैं कि मंदिर बनाकर जन-सेवा कर रहा हूँ। जीतने पर भी करूँगा। रास्ता बनवाऊँगा, अस्पताल बनवाऊँगा। ये काम अभी कर नहीं पाया। जो हो सकेगा, सब-कुछ करूँगा। मेरे मन में यही है कि पाप-ताप काफ़ी बढ़ गये हैं। सो सात दिन का उत्सव करूँगा। अन्न-कूट होगा। सारा खर्चा मेरा। तुम सिर्फ़ इतना देखना कि लोगों को कोई असुविधा न हो।"

बाजे बजे। प्रचार चलता रहा। हाबू पाल के इस कारज का मतलब सभी समझते हैं। पर ग़रीब लोग खुश थे। सात दिन तक अन्न-कूट ! सात दिन तो अन्न की चिन्ता नहीं रहेगी।

सचमुच कार्तिक मास बड़ा दुखमय होता है। खेत-मजूर को काम नहीं मिलता। इस समय जिसके घर में जो है, सब बेचना पड़ता है। छोटे खेतिहर ज़मीन बंधक रखते हैं। दुर्गा-पूजा में ग़रीब के मुख पर हँसी नहीं रहती है। धान काटने की वह मनहूस घड़ी हमेशा से इसी तरह बरक़रार है। यह मनहूस घड़ी जब आती है तो कोई अपना धान-भरा खेत हाबू पाल के पास बंधक रखता है, कोई खेत-खेत में हवा से झड़ा धान बटोरता है। कितने लोग परिचित हैं, भारत के इस नागरिक से ? भूमिहीन होकर दारिद्र्य-सीमा से काफ़ी नीचे नीरवता में उनकी ख़बर कौन रखे ?

सब शांति से ख़ामोश रहते हैं।

तभी अन्न-कूट की बात ग़रीबों को बड़ी पसंद आयी। हो, ज़रूर हो।

बड़े-बड़े थाल आये। बरतन जमा किये गये। कीर्तन होंगे। सो शामियाना तना। गाड़ी-भर चावल ख़रीदा गया। दाल, तेल के टीन, मसाले अनाज— बेशुमार। भुवन इस महायज्ञ में एक मन चावल देना चाहता है। हाबू ने जीभ काटी। मंदिर को फिर से रँगने के लिए सीढ़ियाँ बाँधी गयीं। हाथ चलाओ। मंदिर को झकझक चमका दो।

हाबू पाल ने सुदाम को बुलाया। ऐसे काम में वह भी रहे। उसके कारण ही यह सब हुआ।

सुदाम नहीं आया।

नवीन सुदाम की खोज-ख़बर लेता रहता है।

अन्न-कूट का जोड़-तोड़ होते देख बोला, "अगर कर सकता तो सब नष्ट कर देता। तब हाबू तड़पता।"

"ऐसा क्यों कहते हो, भाई ?"

"प्रचार करता है, ढाँक बजवाता है। सब-कुछ नया करता है।"

सुदाम चुप रहा।

"तुम्हें बुलाया था ?"

"हाँ।"

"तुम...?"

"जाऊँगा...समय पर।" सुदाम स्थिर है।

"मानी सोचती थी, तुम उस पर...।"

"सोचती थी ?"

"हाँ ! और हाबू पाल सोचता था...।"

"कहा तो है कि जाऊँगा ।"

"जाओगे ?"

सुदाम हँसा, बोला, "अरे दादा ! उसने मेरी इस छत को छोड़कर सब-कुछ ले लिया है । मंदिर से भात देता था, वह भी बंद कर दिया । तब मानी को सर पर बिठाया । राधी चली गयी। मुझसे बोला—भवानी पर विश्वास नहीं तेरा। तू मजूरी खटने गया । इसी कारण तुझे निकाल रहा हूँ । मैंने 'शीतला कारबार' बनाया है ।"

"उसने इतना किया, तब भी जाओगे ?"

"जाऊँगा । मैंने तो कभी संसार से अपने को नहीं बांधा । सब कहते थे, तू भला है । वह पिक्चर देखी थी । उसमें देवी बोलती है, 'पाँकाल मछली की तरह रहो । कुछ मत समेटो ।' सबने कहा—तू तो सूअर, पूरा पाँकाल हो गया है ।"

"यह सब कहने की बातें हैं ।"

"राधी को ले गये ! जाने दो ! मेरी बेटी गयी । लेकिन हाबू पाल की यह कीर्ति, यह जो मंदिर का धंधा...मेरी राधी चली गयी । किसी को कुछ पता चला ? वही हाबू पाल आज वोट माँगने जा रहा है । कौन पाँकाल नहीं है, बोलो ? हाँ, तुमने कहा था, पाँकाल होना संभव नहीं है । वह भी ठीक है ।"

"तुम तो ज्ञानियों की-सी बातें कर रहे हो ।"

"जाऊँगा । क्यों न जाऊँ ? पैसे वाले ने बुलाया है । जाऊँगा नहीं क्या ? पैसा ही तो सब-कुछ है ।"

नवीन निराश होकर चला गया । सुदाम अगर नहीं जाता तो उसकी जीत होती । सुदाम के जाने से हार । पर उसे कुछ समझ में नहीं आता ।

द्विजपद बोला, "कितने दिन रखता दुख मन में ? राधी को गये तो ढाई महीने हो गये ।"

बात खूब फैली । हाबू पाल ने सुदाम को अलग से बुलाया है । सभी को पता था, सुदाम के न जाने पर नवीन जैसे लोग बड़े खुश होते । जो जाते,

वे भी। अब हर कोई तो निर्भीक, निःशंक हो नहीं सकता। कोई मन-ही-मन खुश हो लेता था।

सुदाम के न जाने-भर से उनकी जैसे भारी जीत होती।

सुदाम के जाने से पराजय हुई। पर एक ठंडी साँस भर कर पराजय मानने को ऐसे आदमी हमेशा से प्रस्तुत हैं।

पहले दिन के महोत्सव में सुदाम नहीं आया।

उसे समय नहीं मिला।

उसे समय मिला पहले दिन की रात को। गहरी काली रात को। जब सब थके थे तब—तब...।

एक टिन किरासन और माचिस लेकर वह निकला। इस घर में हज़ारों रुपये के चावल हैं। उस तंबू में भाड़े की शतरंजी है। शामियाने के नीचे कीर्तन चल रहा है—राधी ! राधी ! राधिका ! सुदाम आग लगाता रहा। शीतला होमियो हॉल, मानी का घर, दुकान, मंदिर, पीछे वाला भंडार, बटेश्वर शिव—सब में।

जब सब-कुछ जल उठा तो लोग-बाग दौड़-भाग करने लगे। हाबू पाल सीना पकड़कर बैठ गया तो सुदाम सामने आ खड़ा हुआ।

"मैं हाज़िर हूँ, हाबू बाबू !"

वह खड़ा रहा। भागने की चेष्टा नहीं की उसने। हाबू पाल आज अविचल नहीं रह पाया। लाखों रुपये जल गये। कौन अविचल रह सकता है ? सुदाम बड़े प्यार से यह सब देखता रहा।

नवीन का सर ऊँचा हो गया। सुदाम ने उसे या उनको नीचा नहीं दिखाया। उसने उन्हें जीतने का आनन्द दिया है। सुदाम मर भी सकता था।

नवीन को अपने को संभालने में देर लगी। सुदाम चुपचाप खड़ा है, यह एक आघात है। नवीन को चोट लगी। फिर भी वह बोला, "यह क्या किया, सुदाम ? यह तो...तुम्हारा ही...कुछ सोचा नहीं ?"

"सोचो तुम ! सुदाम सोचना नहीं जानता। तुम सबके लिए रुका रहा, देखता रहा। फिर जो समझ में आया, कर दिया।"

"इससे लाभ क्या हुआ ?"

"हाबू बाबू से तुम सब दिखा-छिपा कर खाते हो। पाँकाल नहीं हो सकते। मैं तो देखता हूँ, लाभ है। मैं आज पाँकाल हो गया हूँ। मुझे तो कुछ लगा ही नहीं। तुम्हारा कलेजा क्यों फटता है ?"

अपने सूखे सीने पर हाथ फेरा सुदाम ने। बोला, "कुछ भी तो नहीं हुआ ! यह कैसी आग है, जानते हो ? मेरे दिल में थी ! आज मैं शांत हुआ हूँ, ठंडा हुआ हूँ। अच्छी तरह से।"

सुदाम को देखकर सब डर गये। चारों तरफ़ अग्नि की पृष्ठभूमि में वह भयानक, और भयानक लगने लगा। एक नया सुदाम। इस नये सुदाम ने नवीन को एक तरफ़ धकेला। बोला, "तुम हट जाओ ! मैं हाबू बाबू को ज़रा नज़र-भर के देख लूँ।"

मोहनपुर की रूप-कथा

मोहनपुर की रूप-कथा सिर्फ़ आंदी बुढ़िया जानती है। इस रूप-कथा में घर-घर में धान के भंडार हैं, गोहाल में गायें हैं। इस रूप-कथा में वेहुला, एक बहती नदी है। इस नदी में जाल डाल देने-भर से मछलियाँ भर जाती हैं।

इस रूप-कथा में भूख नहीं, अकाल नहीं, ज़मींदारों का अत्याचार नहीं, रोग नहीं, कोई बीमारी नहीं है।

इस रूप-कथा को आंदी बुढ़िया ने भी खुद अपनी आँखों से नहीं देखा है। उसके पूर्वजों ने भी नहीं देखा। यह मोहनपुर वास्तव में था भी नहीं। वेहुला की धार ने जब अपना रूप पलट दिया था तो मोहनपुर पानी के नीचे आ गया था। फिर एक और मोहनपुर बसा था।

इस मोहनपुर में हद दरजे की ग़रीबी है। कलकत्ता से दो घंटे ट्रेन में जाओ तो इरकानपुर स्टेशन आता है। स्टेशन से उतरकर थोड़ा पूरब चलिये तो वेहुला गाँव आयेगा। कुछ दूर पूरब चलकर फिर दक्खिन घूमना होता है। तीन मील पैदल चलने पर आता है मोहनपुर गाँव। तिक्तरों और केवटों का ग्राम। रास्ते के नाम पर बस धान के खेतों के बीच पगडंडियाँ हैं।

आंदी बुढ़िया की कमर झुक गयी है। आँखों की रोशनी भी धुंधली हो गयी है। सारे दिन वह पत्ते, डुमुर और दूर्वा घास बीनती है। अच्छे डुमुर बीनकर जेल-पाड़ा के दुर्गा और बतासी को दे देती है। वे काफ़ी रात गये गाड़ी में कलकत्ता जाते हैं और शाम को लौट कर आंदी को हिसाब समझा देते हैं। अपना हिस्सा रख लेते हैं।

दुर्गा बोलती है, "चार लड़कों के होते इतना क्यों खटती हो ?"

आंदी कहती है, "पेट नहीं भरता, बेटी ! वे कोई यह कहते हैं कि माँ तुम खटती रहो ? वे तो जितना उनसे बनता है, करते ही हैं। क्या दिन आ गये ! जो भी आता है, सब चावल खरीदने में ही चला जाता है।"

"चावल कहाँ है ? सारा कलकत्ता चला जाता है। इतने दिन से चावल कहाँ जा रहा है, बस चला जा रहा है।"

"यह क्या बात हुई ? अब यहाँ क्या कोई पाँच रुपये पल्ला चावल खरीद सकता है ?"

"और क्या, मौसी ?हम तो हमेशा ही दुख उठायेंगे। रोज़ ही गाड़ी से कलकत्ता जायेंगे-आयेंगे। लेकर लौटेंगे उससे पाँच रुपये। इतने में कहीं पेट भरता है ? घर में सात मुँह हैं।"

"पहले तो ऐसा नहीं था। तुम्हारी बुआ-पूजा में क्या कुछ नहीं लाती थी ! आँख बन्द करते ही सब-कुछ दिखायी देता है।"

"अब तो वह बस बात रह गयी है। बुआ ने इतना ख़र्च किया, इसीलिए तो अब हमारे लिए कुछ नहीं बचा। तब कलकत्ता के लोग कैसे जीते थे ? अब भी तो गाँव से ही घास-फ़ूस और चावल आदि जाते हैं वहाँ।"

"आँख बन्द करते ही जैसे सब-कुछ स्पष्ट दिखता है। फिर जैसे सब अन्धकार।"

"ऐसे दिन आये हैं, मौसी, आँखें बन्द करके ही देखना होगा। खाने को भात, पहनने को कपड़े, सिर का तेल, पुआल—सब-कुछ अब आँखें बन्द करके ही दीखेगा।"

"सब-कुछ धुँधला-धुँधला देखती हूँ, बेटी ! ऐसा क्योंकर हुआ ?"

बतासी अभी भी है। वह बोला, "नाती से कहो, इरकानपुर ले जाये। डॉक्टर को दिखाओ, दवा खाओ। फिर सब अच्छी तरह दिखायी देने लगेगा।"

दुर्गा रियलिस्ट है। बोली, "अब घर की गाय कहाँ जायेगी ? कितना जंजाल है ! अच्छा अब छोड़। मौसी, गुगली उबाल कर खा लो। धुँधला दीखे तो गुगलि का झोल खाओ। कबर का घर याद है न ? गुगली खाते थे।"

तब आंदी गुगली बीनने गयी। और अचानक ही उसे टेढ़ी-मेढ़ी, नयी जाति की ही सही, पर मछली मिली। वह उसे गमछे में बाँधकर ले आयी। बड़ी बहू ने खोला। चिल्ला उठी। मछली नहीं, जल-डोंड साँप है। वह भागी।

सब बूढ़ी को डाँटने लगे। बोले, "ज़िन्दा साँप पकड़ लायी ?"

"पानी में इसे केवट पकड़ते तो मर जाते।"

"अरे! वेहुला में मछली के रहते साँप से कटवा कर मरने की इच्छा ?"

छोटा लड़का बड़ा ही अप्रिय सत्य बोलता है। बोला, "वेहुला में जाकर मछली पकड़ते-पकड़ते तुम किसी दिन नरक में जाओगी।"

"हाँ, मैं नरक में जाऊँगी। इतनी बड़ी बात कह दी ?"

"कहूँगा नहीं ? मछली खाने का इतना चाव ?"

"मैं क्या अकेली खाती ?"

"नहीं, सभी को देती। पूछता हूँ कि क्या मछली हमारे भाग्य में है ? बड़ी मछली ? अरे, सबों का छोड़ा हुआ बीनकर पूठी लाते हैं, बस यही हमारा भाग्य है। बड़ी मछली का लालच करेगी तो वह साँप बन कर भाग जायेगी।"

सारी बातें सुनकर बड़े लड़के का वेटा नोदा बोला, "क्यों अम्मा, बड़ी मछली मिलने पर लाओगी न ?"

छोटा वेटा बोला, "ग्वाले का बेटा! मछली के लिए माँ गँवायेगा क्या ? लालची! अगर न बोने से ज़मीन में धान होता तो वह धान सीधे घर लाने पर बड़ी मछली खिलाता। मछली के लालच में माँ खोना मुझसे नहीं होगा।"

उसने इन शब्दों के साथ अपना असीम मातृ-प्रेम प्रदर्शित किया और भात खाकर खेत पर चला गया। इस सारी घटना से आंदी को रूप-कथा का एक नया संस्करण प्राप्त हुआ। आंदी ने आश्चर्यचकित होकर कहा, "मछली पकड़ी, वह साँप बन गयी।"

बड़ी बहू ने कहा, "गयी क्यों थी ?"

"गुगली लाने।"

"क्यों ?"

"आँखों से कुछ भी साफ़ नहीं दीखता। गुगली खाने से जाला फट जाता।"

"गुगली मैं ला दूँगी।"

"ठीक है।"

आंदी बड़ी खुश हुई। बोली, "तू ही ले आ। तुझे छोड़कर और कौन है मेरी देखभाल करने वाला ?"

गुगली खाकर भी आंदी की आँखों का जाला दूर नहीं हुआ। एक दिन धान का भूसा सिर पर ला रही थी। पूरी तरह से दिखायी न देने पर पोखर में गिर गयी। मँझले नाती ने आकर उठाया। पानी से बाहर आकर थोड़ा स्वस्थ होने पर वह बोली, "ऐसा होगा, यह जानी हुई बात थी। मछली पकड़ी तो वह साँप बन जायेगी। ज़मीन पर चलो तो पोखर बन जायेगी।"

छोटा लड़का बोला, "अपनी रूप-कथा बन्द करो। अन्धी हो रही हो।"

"तो मुझे अस्पताल ले चलो।"

"जाओगी कैसे ?"

"क्यों, पैदल चलकर।"

"डॉक्टर क्यों देखेगा ?"

"क्यों नहीं देखेगा ?"

"ग़रीब को देखता है ?"

"ठीक है, इनायत से कहती हूँ।"

"कहो। इनायत तो जैसे ग़रीब को देखते ही अपने को बिछा देता है। सरकारी काम करता है। कहता है...।"

"मुसलमान है, खाने-पहनने वाला है।"

"जाओ न उसी के पास।"

इनायत माइनर पास करके, नश्कर के ज़ोर से अस्पताल में चपरासी लग गया है। घूस-वूस लेकर वह रोगी को दिखवा देता है। गाँव में काफ़ी सम्पत्ति है, खूब बोलबाला है उसका। इस बार उसने नारियल के सौ पेड़

वेचे हैं। अग्नीश्वर केले भी। फूंस की छत हटाकर अब टीन की छत डाल ली है। वह गाँव के सभी लोगों को खुश भी रखता है। क्यों? ग़रीब मुसलमान-पाड़ा में उसके घर का संभ्रांत चेहरा एक कुत्सित दाग़ है—कंकाल जैसी भिखारी औरत की लिपस्टिक की तरह। पड़ोसियों की तीखी निगाहें वह नहीं झेलना चाहता। उसकी हालत का सुधरना और पड़ोसियों की आँखों का टेढ़ा होना, दोनों सच हैं। लेकिन संयमित व्यवहार से वह दोनों विपरीत स्थितियों में तालमेल विठा कर रखता है।

इसी इनायत के पास आंदी गयी। बोली, "अरे इनायत! वड़े कष्ट में हूँ।"

"क्या हुआ, मौसी?"

"अव तो तुम्हारा सहारा है।"

"वोलो तो?"

"आँखों से सव-कुछ धुँधला दीखता है।"

"नन्द को साथ लेकर अस्पताल चली आना।"

नंद को समय नहीं मिला। नंद का लड़का आंदी को लेकर गया। आंदी के शरीर में इतनी ताक़त नहीं है अव। कुछ दूर ही चले थे कि मतिउर की वैलगाड़ी दीख गयी।

मतिउर वोला, "चढ़ जाओ। बूढ़ी हो, कितनी दूर तक ठुकठुक करोगी। कैसे इतनी दूर पैदल चलोगी?"

पुआल पर वैठकर आंदी अस्पताल पहुँची। इरकानपुर का स्वास्थ्य-केन्द्र समूचे वेहुला प्रखंड की आवश्यकताओं को निपटाने में असमर्थ है। इस अस्पताल में बीस विस्तरे हैं। रोगी हैं साठ। एक विछौने पर एक से ज़्यादा रोगी और उस पर भी ठेलमठेल का दृश्य स्वाभाविक दृश्य है।

बीस विस्तरों के अस्पताल में सिर्फ़ दो डॉक्टर हैं। यहाँ आये हुए डॉक्टर यह समझाते हैं—आउटडोर मरीज़ होते हैं सौ से ज़्यादा। साठ से ज़्यादा इंडोर मरीज़ यहाँ हमेशा वने रहते हैं। अपौष्टिक भोजन के कारण प्रतिरोध-हीन शरीर में मलेरिया, हैज़ा, आमबात, शोथ यक्ष्मा, टाइफ़ाइड, न्यूमोनिया इन सेफैलाइटिस, रक्ताल्पता, डायबिटिज़, गैस्ट्रिक अल्सर, काट-फाट, लाठी की चोट, फोड़ा, साँप और पागल कुत्ते या सियार के काटे, कान

में मैल व डिपथिरिया जैसी बीमारियों का निदान सम्भव नहीं है।

दवा के नाम पर एक गुलाबी मिक्सचर, एन्ट्रावयीनॉल, सल्फ़ाडा-इजिन, सल्फ़ागुआनिडाइन और प्रचुरमात्रा में गर्भ निरोधक दवाइयां हैं। बड़ा ही निराशाजनक है सब कारबार। यहाँ कोई भी औरत गर्भ-निरोध के प्रति उत्साही नहीं है। परिवार-नियोजन सिखाने आने वाली दीदीमुनि आती हैं और लाल त्रिकोण का महत्व समझाती हैं, पर वे झाड़ खाती हैं इस तरह—

"तुम क्या जानती हो ? हमारे लोक-जन ही हमारी शक्ति हैं। जितने हों, उतना ही अच्छा।"

"कष्ट ? कैसा ? जिस दिन फल होने पर पेड़ को कष्ट होगा, उस दिन सृष्टि पलट जायेगी।"

"हमारे यदि दस भी हों तो तुम्हारा क्या ?"

डॉक्टर जानते हैं, उनका हाल चौदह हाथ जल में डूबी नाव की तरह है। नर्स-दाई उन्हें मिलती नहीं। ऐसा काम तो कलकत्ता के अस्पताल में प्रशिक्षित युवतियां करती हैं।

वे यहाँ रहेंगी कहां ? रहने की जगह नहीं है। पक्का घर और निरा-पद वास न हो तो वे आयेंगी ही क्यों ? स्वास्थ्य-केन्द्र घिरा या सुरक्षित नहीं है। डकैती 'क्रॉनिक' है, चोरी भी। बहुत चेष्टा करने पर भी नर्स के रहने की व्यवस्था नहीं की जा सकी है।

सरकार की एक शुभेच्छा जानकर डॉक्टर सशंकित है। तीन महीने की ट्रेनिंग प्राप्त कम्यूनिटी हेल्थ-वर्कर यहां भी आ सकता है।

उद्देश्य महान है। कुछ दवाएँ, बैग और महीने में पचास रुपये देकर इन स्वास्थ्य-कर्मियों को भेजा जायेगा। वे सरकारी स्वास्थ्य-केंद्रों और जन-साधारण के बीच की रिक्तियों को पूरा करेंगे।

ये सारे कार्य-कलाप राजनीतिक कारणों से होंगे, डॉक्टर की ऐसी धारणा है। इसके बाद ये उत्साही युवक ज्यादा-से-ज्यादा रोगियों को अस्पताल में भेजेंगे।

यह सोचते ही डॉक्टर को बुख़ार आ जाता है।

अगर वे कलकत्ता के होते तो कभी के भाग चुके होते। पर वे साबुद-

पुर के हैं, वे भागकर साबुदपुर ही पहुँच सकते हैं। भागें कैसे ? रोगी उनको से वहाँ से भी पकड़ लाते हैं।

सरकार ही डॉक्टर के मनोरंजन का कारण है। सरकार ने स्वास्थ्य-केंद्र के लिए चूल्हा मंजूर किया था। तब रसोई नहीं थी। अब रसोई है, चूल्हा नहीं। चूल्हा-चक्की—तमाम काम हेदो नश्कर करता हैं। वह जो भेजता है उसमें से हिस्सा बँटाता है सेंटर का अस्थायी नौकर। रोगी खाने की गंध से ही खुश रहते हैं।

डिटॉल, रूई, बैंडेज बच नहीं पाते। इमर्जेंसी में लालटेन जला कर, उपकरण गर्म जल में उबाल कर ही डॉक्टर अस्त्रोपचार करते हैं। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि कम्पाउंडर हरि नन्दी और चपरासी इनायत दोनों ही रोगी देखते हैं।

जान-बूझ कर ही इरफान ने आंदी को आने को कहा था। काफ़ी देर बैठे रहे आंदी और नोदा। आंदी सिर हिलाती थी। यह स्वास्थ्य-केंद्र उसके लिए जैसे स्वर्ग है। नाती से कहने लगी, "एक बार भरती हो जाती तो मजा आ जाता। खाट पे सोती, भरपेट खाती। अरे बाप ! कितनी अच्छी व्यवस्था है यहाँ, नोदा !"

दो बजे दोपहर आंदी बुढ़िया को बुलाया गया। बुढ़िया ने चालाकी से अपनी साड़ी में सत्तू और गुड़ के चार लड्डू बाँध रखे थे। हाथों में छुपा कर वह बहुत देर से चुपचाप खाती रही है। नहीं तो क्या वह वहाँ बैठ सकती थी ? वह भूखी-प्यासी ! नोदा पैसा लाया था। स्टेशन पर ही चाय और पावरोटी खाकर आया था।

आन्दी की आँखें देखकर डॉक्टर को कुछ समझ में नहीं आया। समझने की कोई बात भी नहीं थी। वह तो आँखों का डॉक्टर था ही नहीं। आँखों के डॉक्टर की व्यवस्था इस स्वास्थ्य-केन्द्र में नहीं है। महीने के पहले शनिवार को आँखों का डॉक्टर, दूसरे शनिवार को दाँतों का डॉक्टर, तीसरे शनिवार को चर्मरोग-विशेषज्ञ के आने की व्यवस्था है कागज़ पर। हमारे इन डॉक्टरों की भेंट उन तथाकथित डॉक्टरों से अभी तक नहीं हुई है।

आंदी की आँखों की पुतली में एक सफ़ेद धब्बा देखकर उसे इनायत के ऊपर बड़ा क्रोध आया।

बोले, "तुम आदमियों से मज़ाक क्यों करते हो ?"

"क्यों ?"

"यहाँ क्या आँखों की परीक्षा की व्यवस्था है ?"

"आप ज़रा देख दीजिये।"

आंदी ने कातर स्वर में कहा, "दया कीजिये। डॉक्टर साहब ! आपने कितने ही लोगों की बीमारियाँ ठीक कर दी हैं। मेरे ऊपर दया नहीं करेंगे क्या ? सवेरे से बैठी हूँ, अब क्या आप...?"

डॉक्टर ने ठंडी साँस ली। कल से पेट ख़राब है। आज थोड़ी-सी खिचड़ी खायी है। सवेरे से दो बज गये, अब तक नाच रहे हैं। अपने बारे में जैसे वे भूल गये हैं। आंदी की आँखों को टॉर्च से देखा, ठीक से। उसके बाद सैम्पल में आयी दवा दी। दस मल्टी-विटामिन की टिकिया भी दीं। बोले, "यह आँखों में डालना, बूढ़ी माँ ! और यह गोली दस दिन सवेरे-सवेरे खाना। अभी तो नहीं, पर दो मास बाद यहाँ बहुत-से डॉक्टर आयेंगे। तुम्हारी आँखों का ऑपरेशन होगा, समझीं ! तुम्हारी आँखों में मोतिया-बिन्द हो गया है, बूढ़ी माँ !"

"तभी सब-कुछ धुँधला दिखता है क्या ?"

"हाँ, बूढ़ी माँ ! आँखों का ऑपरेशन करना होगा। वह अभी सम्भव नहीं है। दो महीने बाद होगा।"

"इतने दिनों में तो मैं अन्धी हो जाऊँगी रे !"

"नहीं, जल्दबाज़ी में ऑपरेशन नहीं किया जा सकता, बूढ़ी माँ ! जब तक मोतियाबिन्द पके नहीं, उसे काटना सम्भव नहीं है।"

"ठीक है, बेटा...तो अस्पताल में भरती कर लो।"

डॉक्टर उसे फुसलाते हुए बोला, "ठीक है, कर लूँगा।"

आंदी अब अस्थिर हुई। बोली, "तब सारी बीमारियाँ ख़त्म हो जायेंगी न, बेटा ?"

"कैसे ?"

"इतना खाना-पीना जो दोगे।"

आंदी की निश्छल हँसी ने जैसे डॉक्टर के कलेजे को बींध डाला।

बोले, "अच्छा, अब जाओ।"

आंदी ने उसे आशीर्वाद दिया और चली गयी।

घर लौटी तो जैसे उसकी कहानी ख़त्म ही नहीं होती थी।

डॉक्टर ने कैसे बत्ती जलाकर देखा, कैसे उसे दवाई दी, कैसे उसे भरोसा दिया।

छोटा लड़का बोला, "यह तो रूप-कथा जैसी कहानी हो गयी।"

"हाँ, कहानी ही समझो!"

आंदी ने कच्चू बाज़ार भेजे तो असीम कृतज्ञता दर्शाते हुए एक छोटा-सा कच्चू वह इनायत को दे आयी।

बड़ी बहू बोली, "अरे, हाट में बेचती तो नमक-तेल जुड़ता। उसके घर में देने से क्या लाभ?"

आंदी बोली, "मान-कच्चू तो मैंने ही लगाया था। एक ही तो दिया है उसे। अगर न दूँ तो मेरी आँखों का आपरेशन कैसे होगा?"

आई-ड्रॉप डालते समय आंदी को खुद विभ्रम होता था, जैसे सब-कुछ स्पष्ट देख रही है। गोली खाते ही लगता था कि शरीर में ताक़त आ रही है।

बीच-बीच में पूछती है, "हाँ रे नोदा, दो महीने हैं। कितनी देरी है?"

"जब होना होगा तो हो जायेगा, अम्मा!"

"यह क्या जवाब हुआ?"

बड़ी बहू ने उसाँस ली। बोली, "माँ, वह क्या जाने? जब समय आयेगा तो मैं तुम्हारे जाने की व्यवस्था कर दूँगी। उसे क्या पता?"

बड़ी बहू पर आंदी को अगाध भरोसा है, अगाध विश्वास। बोली, "तू जब कहती है तो होगा ही।" उसके बाद घूमने-फिरने निकल गयी। लौट कर आयी तो बोली, "इस कच्चू को भून देगी! मैं मिर्च-भात के साथ खाऊँगी।"

मँझली बहू बोली, "अभी जो खाया था?"

"खाया था। शर्म आती है। मन में लगा कि कुछ खाया नहीं। एक मुट्ठी मूढ़ी दे दे।"

"अब मूढ़ी खाओगी ?"

बड़ी बहू ने समझाया, "इन्हें क्या कोई समझ है, कादू ? जितनी बात बढ़ायेगी उतनी बढ़ेगी। दे दे मूढ़ी। अभी भी दस टोकरी चिवड़े कूटने बचे हैं।"

"ओ बहू ! चिवड़े देगी ?"

"नश्कर के घर वाले आयेंगे तो हमें ही कूट डालेंगे। बरात के हैं।"

"इसी से जल्दी कूट रही है ?"

"हाँ।"

"क्यों, अपना होता तो नहीं कूटती क्या ?"

बड़ी बहू ने दुख से गरदन झुका ली। क्या सिर्फ़ आंदी, उसकी सास का गुज़ारा उसके काम से होता है ? घर के सभी लोग उसके ऊपर निर्भर करते हैं। इसीलिए तो वह नश्कर-जिन्नी के हाथ-पैर पकड़ कर चिवड़े कूटने का, मूढ़ी भूनने का काम लाती है। बदले में चावल मिलते हैं। तेफलना धान का चावल वजन में भारी होता है, कम फूलता है। पर है तो चावल ही।

आंदी के चारों लड़के नश्कर के खेतों में काम करते हैं। इस ब्लॉक के गाँव-गाँव में नश्करों की ही ज़मीन है। सभी जमींदार नश्कर के रिश्तेदार हैं। 'सीलिंग' शब्द गाँव के लिए है। लेकिन नश्कर के लिए 'सीलिंग' का कोई अर्थ नहीं। उसके लिए यह मज़ाक है, बस। चारों तरफ़ नश्कर की जमीन है। खेती दूसरे करते हैं। 'खेती करते हैं' का मतलब बटाईदारी नहीं है। नश्कर अपनी सुविधानुसार उन्हें मजूरी देता है—रुपये या धान की शक्ल में।

यह ग़ैरक़ानूनी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। नश्कर ही मछली-हाट और कोल्ड स्टोरेज का मालिक है। वह स्वास्थ्य-केंद्रों और अन्य तमाम केंद्रों का ऑर्डर-सप्लायर है। और तो और, वह पंचायत का भी प्रधान है। मोहनपुर में उसका चचेरा भाई प्राणनाथ उसकी सम्पत्ति की देख-भाल करता है।

मोहनपुर में प्राणनाथ की ही चलती है। आंदी का कुछ समझ में नहीं आता। लेकिन उसके बेटे प्राणनाथ का भाषण सुन-सुनकर परेशान

हैं। प्राणनाथ उन्हें धमकाता है, "बर्गादार यूनियन में मत जाना, नन्द ! कुछ लाभ नहीं होगा।"

"न जायें तो गोविंद इत्यादि छोड़ देंगे क्या ?"

"लाभ नहीं होगा। गोविन्द पार्टी का आदमी है। खुद मिल जायेगा उनसे और तुम्हें छोड़ देगा।"

आंदी के बेटे बड़े चक्कर में थे। दूसरी जगहों पर बटाईदारों को सुरक्षा हेदो और गोविन्द देते हैं। हेदो अपने मामलों में किसी भी क़ानून को मानने के लिए तैयार नहीं है। गोविन्द स्वभाव का सच्चा और कड़क-मिज़ाज है। वह किसी भी बाई-लेन स्थिति को नहीं समझ सकता। उसका कहना है, यदि आंदी के बेटे हेदो के डर से बटाईदार यूनियन में शामिल होना नहीं चाहते, तो वे भी हेदो के दल की तरह सरकारी आदमी हैं, विश्वासघाती !

आंदी के बेटे गोविन्द को चाहकर भी समझा नहीं पाये कि गाँव में हेदो नश्कर ही गवर्नमेंट हैं। उसके खेतों में नाच-गान करके किसी तरह 'साँप भी मर जाये और लाठी न टूटे' के सिद्धान्त पर उत्पीड़न होता है। हेदो के डेढ़-सौ खेतिहरों में से कोई भी यह व्यवस्था तोड़कर चिरस्थायी उपवास के बंदोबस्त से मरने को राज़ी नहीं है। गोविन्द यह भी नहीं समझता कि भूख से डरे बेसहारा आदमियों की यह निष्क्रियता सैबोटेज नहीं है। वैसे सैबोटेज वे कर भी नहीं सकते। दूसरों को समर्पित और देश-कर्मी ग्रामीणों की अवस्था क्या हो सकती है, गोविन्द इसका प्रमाण है।

गोविन्द कुछ दिनों के लिए कलकत्ता चला गया। फलस्वरूप आंदी के बेटे नश्कर की बंजर ज़मीन पर हल चलाते रहे। लेकिन थोड़े दिन बाद ही गोविन्द एक नये रूप में, एक नये कर्मी के रूप में मोहनपुर लौटा। उसका चेहरा उद्दीप्त था। गोविन्द हमेशा से ही कड़े मिज़ाज का रुक्ष लड़का है, पर है सच्चा। अपनी पार्टी के प्रति वफ़ादार होने के बावजूद उसने सबसे पहले विरोधियों के नेता के शव को कंधा दिया था। इतना करने के बाद अब वह बच्चों को स्कूल भेज सका है। पर वह अंदर से कितना टूटा है, कोई नहीं जानता।

लड़के-लड़कियाँ अगर लिखना-पढ़ना सीख लेंगे तो उनका ही उपकार

होगा। सो यह नेक काम करने के लिए उसे किरॉसिन भी ढालना पड़ा है ! अध:पतन, अध:पतन ! निश्चय ही कांग्रेस के कुशासन का परिणाम है यह।

इतना होने पर भी स्कूल खाली रहे। छात्र अपने बापों के साथ खेती-बाड़ी का काम-काज सीखते रहे। गाय-बैल संभालते रहे। गोविन्द जब कहने गया तो उसका बड़ा अपमान हुआ। एक बूढ़ा बोला, "बेमतलब की बातें मत करो, गोविन्द ! लिखने-पढ़ने पर क्या अच्छा है क्या बुरा, इसे तुम भी जानते हो। एक पास तक नहीं दिया तुमने।" एक पास-भर दिया है, तभी एक दूसरा महाज्ञानी बूढ़ा बोला, "तो तुम आदमी बन गये हो ! ग़रीबों की बात सोचते हो ! लेकिन नश्कर-प्राणनाथ तो ऐसा नहीं करते, वे तो गरीबों के पीछे डंडा घुमाते हैं ?"

"ऐसा ! इस बार किरासिन कौन देगा, देखूंगा।"

"तुम दोगे।"

"क्यों? "

"देना होगा। गवर्रमिंट देती नहीं है क्या ? परमिट का किरासिन नहीं दोगे तो हम तुम्हें वोट किसलिए देते हैं ?"

गोविन्द को ऐसे ही लोगों के बीच काम करना होता है।

इसके बाद बटाईदारों का झंझट।

गोविन्द समझाने गया था, "देखो, नश्कर तुम्हें ठग रहे हैं। वे उचित व्यवहार नहीं कर रहे हैं।"

"तब उसको प्रधान क्यों बनाया गया ?"

"तुम एकजुट हो जाओ।"

"क्यों भला ? गवर्रमिंट जानती है कि नश्कर कैसा आदमी है। अगर उसे रोकना है तो गवर्रमिंट रोके। उसकी ज़मीन की जब्ती तो वे कर नहीं सकते तो हम उससे लड़कर क्यों मरें ?"

"मैं तो हूँ।"

"उसके सामने तुम्हारा क्या भाव ?"

"वह जरूर मानेगा।

"बाबा ! बूढ़े मानसि की बातें सुनो। तुम पार्टी के आदमी हो। तुमसे नश्कर लड़ाई नहीं मोल लेगा। कुछ नहीं कहेगा, मान लेगा। पर...।"

"ऐसा क्यों, ज़रा बताओ ? गले में उँगली डाल कर क्यों बोलते हो ? बूढ़े हो, बोलो।"

जो बात कर रहा था, वह बूढ़ा था। कातर आँसू-भरी पीली आँखों से देखते हुए बोला, "बारह साल पहले बटाईदारों का चक्कर शुरू हुआ था। नश्कर उस समय तुम्हारी पार्टी में ही था, अब अलग है। यह तुम भी जानते हो। नश्कर इतने सालों से हर बार कागज़ पर हमारा अँगूठा लगवाकर अपने खेतों में काम करने देता है। वह भी तो पार्टी का ही है। पार्टी के लोग क्या बटाईदारों की समस्या समझते हैं ? कुछ नहीं होगा, बेटा ! ऐसे ही सब चलता रहेगा। ऐसे ही जान निकल जायेगी।"

"ऐसा नहीं होगा।"

"हो रहा था, हो रहा है, होता रहेगा। क्या करें, कहाँ से ताक़त लायें ? जो देख रहे हो, उससे क्यों नहीं समझते ? नश्कर से झगड़ा मोल लेने पर क्या पार्टी हमारी मानेगी, गोविन्द ? रहने दो।"

"यह तो अन्याय है।"

"गोविन्द, तुम बड़े हो गये हो। एक बच्चे के बाप हो। नश्कर की बातें करते हो, लेकिन नहीं जानते वह कैसा आदमी है। उसने कभी अपने देश के लोगों की बात सोची है जो आज सोचेगा ? नक्सलियों के समय वह भागा था। वापस आकर उसने बताया था कि उसने पार्टी के सदर को ख़बर की है कि नक्सलिये सता रहे हैं। फिर, हमें थोड़ा सा दूध पकड़ा दिया था। तुमने भी तो वैसा ही कुछ किया है। अब अचानक दस लोगों की बाबत क्यों सोच रहे हो ? जाने दो। अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में लोग बटाई लेते हैं। हम बस देखते रहेंगे।"

गोविन्द इस बूढ़े की बातों की सचाई समझता है। लेकिन वह यह नहीं समझ पाता कि हेदो, नश्कर अभी भी सरकार के लिए क्यों ज़रूरी हैं ? बोला, "मुझे क्या पता कि कौन सी-बात सही है ? समझ भी नहीं सकता। जो भी हो, मैं कोशिश करूँगा कि तुम्हें किरासिन मिलता रहे।"

यह वादा किया गोविन्द ने। फिर वह कभी आंदी के लड़कों से आन्दोलन के बारे में नहीं कहने गया।

कुछ दिनों तक अनेकों तरह के प्रश्न उठते रहे उसके मन में। फिर

उसे पता चला कि उसे कम्यूनिटि हेल्थ-वर्कर के रूप में चुना गया है। उसे ही क्यों चुना गया? वह अगर गाँव से चला जाये तो क्या गाँव रहेगा? गाँव के लोग गोविन्द के सिस्टम में घुस गये हैं। गाँव के लोगों से उसने कहा, "फ़िलहाल डायमंड हारवर तक जा रहा हूँ। फिर कलकत्ता जाऊँगा।"

"क्यों?"

"क्या तुम हमेशा अस्पताल जा सकते हो?"

"नहीं।"

"चिकित्सा सीखने जा रहा हूँ।"

"सीखने? डॉक्टर बनोगे?"

"और नहीं तो क्या खेती करूँगा? डाक्टर बनना क्या सहज काम है? कितनी पढ़ाई करनी होगी। कितने साल...? उसके बाद दवा के लिए पैसे चाहिए।"

"वह तो चाहिए ही।"

"हमें तो तुमने जन्म से देखा है। मधु केवट का लड़का हूँ। बाप बटाई-दार है। बेटे ने इसीलिए पढ़ाई-लिखाई नहीं की।"

"मुझे क्या कोई पढ़ने भेजेगा, बीस हज़ार खर्च करके? मुझ में क्या ऐसी क्षमता है बाप मजूर, मैं खेतों पर...।"

"वह तो जानता हूँ।"

गोविन्द की पुरानी चोट ताजा हुई। वह बोला, 'कभी मैंने भी गायों की देख-भाल की है। बाप के पास पैसे नहीं थे, स्कूल नहीं जा सका। लेकिन गायों की पीठ पर बैठे-बैठे अनेक सपने देखे हैं मैंने। सपने में डॉक्टर बनता था, इंजीनियर बनता था, ट्रेन का ड्राइवर बनता था। कभी-कभार नश्कर भी बनता था।"

"यह जो आख़िरी सपना तूने बताया, वह अच्छा नहीं था। दो नश्कर होते तो हम मर ही जाते।"

"तब...अब जब मैं देश का काम कर रहा हूँ, पार्टी का काम करता हूँ तो मुझे कष्ट नहीं है। ना...चाचा, मैं डॉक्टर बनूँगा। टीके लगाऊँगा। हैज़े का इंजेक्शन दूँगा। थोड़ा-बहुत जो भी हो, चोट-फेंट, जले-कटे का इलाज

करूँगा, नहीं तो मरीज़ को अस्पताल ले जाऊँगा। वही सब सीखने जा रहा हूँ, तुम्हारे लिए ही। मेरे रहते हुए भी तुम्हारी हालत ठीक नहीं है। चला गया तो क्या होगा, यही सोच रहा हूँ।"

गाँव के लोग उसके दिल की बात समझते हैं। ग्राम-कार्यकर्ता गोविन्द ही उनका संबंध सरकार और एक विदेह और अनुपस्थित बाह्य जगत से जोड़ता है।

यह जानने के बाद भी कि गोविन्द उन्हें टीका और इंजेक्शन देगा, वे इसके बारे में सोचकर डर जाते हैं। गोविन्द...अरे बाप रे! वह तो घर में घुस कर खूंटे से बाँधकर इंजेक्शन ठोक देगा!

ठंडी साँस भरते हुए अधर केवट बोला, "यकायक ग़ायब मत हो जाना। ऐसा हुआ तो हमें गेहूँ, किरॉसिन—कुछ नहीं मिलेगा।"

"नहीं, नहीं, बीच-बीच में आता रहूँगा।"

गोविन्द ने अपनी बात रखी। प्रशिक्षण समाप्त होने पर गोविन्द को 50 रुपये का भत्ता मिलेगा, यह बात सुनते ही माँ बोली, "तो मैं लड़की देख लूं, गोविन्द?

"क्यों भला, लड़की क्यों?"

"डॉक्टर बनेगा, पचास रुपये की नौकरी हुई है। अब शादी कर ले।"

"घर-आंगन में हंस के बच्चों की तरह टोपरे-भर बच्चों की पेंक-पेंक सुने बग़ैर तुम्हें चैन नहीं पड़ेगा। देख माँ, मैं सिर्फ़ तुम्हारा बेटा ही नहीं हूँ, पार्टी का कार्यकर्ता भी हूँ। दस लोगों का काम करना होता है।"

"दस लोग तुम्हारे कंधे पर होंगे, समझे! यह भी सुन ले कि तू दस लोगों के पेट से पैदा हुआ है कि मेरे पेट से? पार्टीबाज़ी कर-कर के क्या तेरी मति भ्रष्ट हो गयी है?"

"पार्टी की बात मत कर!" कहते हुए गोविन्द ने क्रोध में भात की थाली फेंक दी और बैठने की पीढ़ी तोड़कर चला गया। माँ ने गोविंद के छोटे भाई की बहू से आँखों में आँसू भर कर क्रोध से कहा, "यह पार्टी क्या है, बेटी? गोविंद अब अच्छा-बुरा कुछ नहीं देखता। पहले क्या वह पीढ़ी तोड़ देता था?"

"क्या?"

"सोयामि को पूछना। कितनी हँडियाँ-पताले तोड़े हैं। यह पार्टी का गुण है, बेटी! लड़के का भला हो, यह सोच कर मैंने चंडी थान में जल चढ़ाया है, प्रसाद दिया है। कम किया है क्या मैंने ?"

छोटी बहू ने गहरी साँस ली। अपनी बुआ की लड़की के साथ अपने जेठ की शादी करवाना चाहती थी वह।

गोविन्द चला गया प्रशिक्षण लेने। नश्कर ने अपने लोगों से कहा, "लौंडा जितने दिन बाहर रहेगा, उतनी ही देर हमें लाभ होगा। बड़ा बदमाश है। सिर्फ़ दूसरों को कोंचना जानता है। किरॉसिन और गेहूँ के ज़रिए अपनी चलाता है। किरॉसिन है, इसीलिए न! पहले क्या था वह, क्यों पेतू ?"

"यह कौन समझता है ?"

"इस इलाके में सबका मिज़ाज गरम है। गोविन्द बोलता है, गेहूँ दो। अरे पहले क्या गेहूँ था यहाँ ? रोटी का नाम जानते थे क्या लोग ?"

"अब मैं क्या कहूँ !"

"सुनता कौन है ?"

अब इसी तरह जो लोग नश्कर के सामने जी-हुजूरी करते थे, उन्होंने ही उसके लौटने पर उसे यह बातें बतायीं।

"तो रोते क्यों हो ? जाओ उसी के पास मजूरी करने," वह बोला।

जब उसने यह बात कही तो वह पार्टी का नहीं, स्वतंत्र व्यक्ति था। बटाईदार का लड़का। यही उसकी मानसिक प्रतिक्रिया थी। वह नश्कर के यहाँ गया। बोला, "चाचा! परमिट की किरॉसिन और गेहूँ देने का समय आ गया है। इसलिए...।"

"मैं क्या देता नहीं हूँ या तुम्हें भरोसा नहीं ? अपने लोगों में ही अविश्वास पैदा हो जाये तो सर्वनाश हो जाता है, गोविन्द !"

"आप हैं, इसीलिए तो भरोसा है।"

"मोहनपुर की आंदी के बेटे कहाँ चले गये हैं ? तुम्हारे केवट-पाड़ा के चाँद, हरेन और शशधर भी दीखने मुश्किल हो गये हैं।"

"उन्हें सिखा रहा हूँ। समझे, चाचा ? मैं एक स्वास्थ्य-कार्यकर्ता हो गया हूँ। आपकी सहायता करूँगा। आप अकेले कहाँ-कहाँ घूमेंगे ? सरकार

का ऐसा ही नियम है। दस लोगों को साथ रखकर ही काम करना होता है।"

"ठीक है, जैसा तुम कहते हो, ठीक है।"

नश्कर खुंदक में था। स्थिर होकर बैठा। गोविन्द की पिटाई मौक़ा मिलते ही करानी होगी। फिर बोला, "जितनी मुझ में शक्ति है, उतना करता हूँ। तुम जो बने हो वह युवा-शक्ति से बने हो। कुछ लोग पहले भी होते थे, वे दूसरों के लिए काम करते थे। उन्हें हम वालिंटियर कहते थे। जब माले की बुआ बेहला में डूबी थी तो क्या वालिंटियर नहीं थे ?"

"दूसरों ने क्यों नहीं बचाया ?"

"दूसरों का काम ही वालिंटियर करते हैं।"

"यह सब बेकार की बातें हैं, चाचा ! जो जितना जानता है, उसे लेकर ही चलना होगा।"

नश्कर को लगा कि जैसे उसने नीम चबा लिया हो। गोविन्द बोला, "हम अगर सिर्फ़ मोहनपुर की ही बातें सोचें तो कैसे काम चलेगा ? बेहला से भी लड़के जुटायेंगे। वे लोगों का ख़याल रखेंगे, कार्ड देखेंगे और सामान बाँटेंगे।"

"जब तुम कहते हो तो...।"

"मैं क्या कहूँ ! लोगों को अगर सामान मिलता रहे तो मुझे क्या कहना है ? कहना पड़ रहा है, यही दुख की बात है, समझे चाचा ?"

कहते-कहते गोविन्द का मुँह लाल हो गया। ललाट की शिराएँ फूल गयीं। नश्कर को गोविन्द के भयानक गुस्से का भी ख़याल आया। वह अत्यन्त नरम स्वर में बोला, "बेटा ! उम्र ढल गयी है। फिर सिर पर इतने काम। भूल-चूक तो हो ही जाती है। माफ़ करो। मैं क्या कोई सब-कुछ जानता हूँ ? तुम भी तो कुछ बताओ हमें।"

सारी बातें सुन कर आंदी का बेटा नन्द हठात हँसा। नश्कर ने अपनी तरफ़ देखा। क्षुब्ध होकर बोला, "सच्चे मन से बात कही तो हँसते हो, नन्द ! हँसो, भगवान सब देखते हैं।"

गोविन्द बोला, "जाने दीजिये, हँसा है, दोष इसी का है। आप कोई दुष्ट व्यक्ति तो हैं नहीं, नन्द भी नहीं।...कल सबेरे गेहूँ और किरॉसिन

इस बार मैं खड़े होकर बँटवाऊँगा।"

"जैसा कहो।"

बाहर आकर गोविन्द बोला, "क्या वह छिड़े माल जा रहा है ? ओ... छिड़े चाचा...कहाँ जा रहे हो ?"

"तुम्हारे पास ही आ रहा था। अब तो तुम गूलर के फूल हो गये हो। दिखायी ही नहीं देते।"

"वेहला आये तीन घंटे हुए हैं। तुम कहाँ थे ?"

"मैं और कहाँ होऊँगा ? सुना, तुमने नश्कर को धमका कर गेहूँ और किरॉसिन निकलवाया है ?"

"नहीं, नहीं। परमिट पर माल दिलाने की व्यवस्था की है। झगड़ा क्यों करूँगा ?"

श्रीपद माल बेहला गाँव से बाहर भी साँप-काटे के इलाज के लिए मशहूर हैं। वह साँप-काटे के ओझा हैं, लेकिन वे अपने पेशे के बड़े फ़नकार हैं। उनकी मानसिकता अत्यंत वैज्ञानिक है। चिकित्सा की सीमा वे जानते हैं और रोगियों को अस्पताल ले जाते हैं। अस्पताल में स्नेक-वेनम एंटीसीरम उपलब्ध न होने पर उन्होंने बड़ा लफड़ा भी किया है। उनका व्यक्तित्व ऐसा है कि सरकारी चिकित्सा पर निर्भर होने के बावजूद वे श्रद्धा के पात्र हैं। श्रीपद के मुँह पर एक शान्त पराजय का भाव रहता है। वे जानते हैं कि साँप-काटे के व्यापार में वे हार गये हैं। पराजय उन्होंने स्वीकार कर ली है।

लेकिन इस समय उनके चेहरे पर स्वाभाविक शांत भाव नहीं है। क्रोध है। वे बोले, "साला, महापापी !"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"इसे सुनो, रोना सुन रहे हो न ?"

गोविन्द ने सुनने की कोशिश की। पहचान गया। यह विलाप सर्वत्र व्याप्त है। मृतक के सामने लोगों का विलाप। भारत के संविधान में स्वीकृत हर भाषा में, हर आदिवासी और उपजाति की भाषा में यह विलाप एक जैसा सुनायी देता है। ऐसे विलाप में वाक्य भी शामिल होते हैं। यह रोना गोविन्द सुन सकता है।

"कचू का नाती अपना जान से गया।"

"कौन गया ?"

"मोताहेर। तभी तो वेहुला का कोई भी तुम्हारे साथ नहीं गया।"

"आश्चर्य, किसी ने बताया तक नहीं।"

"क्या कहें ? अस्पताल में इंजेक्शन नहीं है। तभी तो।"

"कब काटा था ?"

"सवेरे। उसी नश्कर के कारण। सूअर का बच्चा ! ईंट के भट्टे पर साँप था। उसने उसे वहीं भेजा था। यदि तू ही नश्कर के पंजे तोड़ दे तो सच्चे आदमी का काम करेगा।"

गोविन्द दुखी मन से हँसा। बोला, "छिड़े चाचा ! मधु केवट का बेटा पार्टी का आदमी है। तुम्हारे लिए जान दे सकता है। नश्कर के पंजे नहीं तोड़ सकता। वह उसका अपना मामला है।"

"अस्पताल में इंजेक्शन का बन्दोबस्त करा सकते हो ?"

"चाचा, जो इंजेक्शन मिलते हैं, वे भी इसी गोविन्द के कारण मिलते हैं।"

"इस से क्या आदमी बचता रहेगा ? उस साले को साँप भी नहीं काटता।"

श्रीपद सर झुकाये चला गया। गोविन्द के मन में नश्कर के प्रति एक नये क्रोध का संचार हुआ। फलस्वरूप दूसरे दिन आकर उसने वेहुला और मोहनपुर गाँव के तमाम लोगों को सही तोल और भाव से गेहूँ व किरॉसिन बाँटा।

नश्कर सुनकर बोला, "आया भी इसी तोल और इसी वज़न से था। माल रहेगा। न रहने पर व्यवस्था की जायेगी।"

उसके बाद गोविन्द चला गया। जाते समय श्रीपद ने कहा, "बीच बीच में हैज़ा फैलता है। साँप का इंजेक्शन लगाना सीख आना।"

"सिखायेंगे तो सीख लूँगा। तुम सभी जानकार लोग हो। परमिट पर चीज़ें मिलने वाले दिन माप-तोल से किरॉसिन-गेहूँ लेना।"

"देगा ?"

"बेमतलब की बात मत करो, चाचा ! हक़ की चीज़ है। सरकार

देती है।"

"नश्कर के बैठाए आदमियों को गाली देना ठीक नहीं होता, गोविन्द!"

"तो जूते मारो। लेकिन चीज़ें माप-तोल से लेना। न दें तो मैं बाद में देखूँगा उन्हें।"

"वही तो मैं कहता हूँ। सरकार देती है तुम्हारे हाथ में। उस माल को निकालने के लिए गोविन्द की ज़रूरत है। है कि नहीं ?"

"क्या करें, बोलो ? कुछ भी करो, वह तो इसी तरह चलाता है। उसका राज उलटना है तो घबराते हो।"

"नश्कर तो इसी तरह चलाता है, चलाता रहेगा।"

"आज या कल मैं भी चला जाऊँगा।"

"यह बात मत कह, गोविन्द ?" इस इलाके के कितने ही लोगों ने यह बात कही। कोई कुछ नहीं कर पाया।

"देखा जायेगा।"

गोविन्द प्रशिक्षण पर चला गया। बीच-बीच में वह आता था। नश्कर को ठीक करके रखना सहज नहीं है। गाँव के लोगों को गोविन्द मदद भेजता रहा। लेकिन प्रशिक्षण के बाद अन्य स्वास्थ्य-कर्मियों के साथ वह चला गया इंटैंसिव ट्रेनिंग के लिए।

फिर वह लौटा एक दिन। एक नये ज्योतिर्मय चेहरे के साथ, एक नये आत्मविश्वास के साथ। जलने, कटने और डूबने की प्राथमिक चिकित्सा सीख आया है। हैज़े का इंजेक्शन और चेचक का टीका लगाना भी उसने सीखा है। मलेरिया के लक्षण पहचानना भी सीखा है। आते ही उसने मोहनपुर का चक्कर लगाया और आंदी के द्वार पर आकर हाँक लगायी, "आंदी बुआ ! अब ज़रा मोहनपुर की बातें सुनाओ। तुम्हारा गोविन्द अब डॉक्टरी सीख आया है।"

दरवाज़े पर रखी पोटली ही आंदी है, यह समझने में उसे समय लगा। समझ आते ही उसे धक्का-सा लगा। शॉक की भी चिकित्सा सीखी है उसने, पर सारे शॉकों की चिकित्सा नहीं होती। पत्ते बटोरने, भूसा बटोरने, घास उठाने वाली आंदी बुआ को पोटली के सदृश देख कर उसे शॉक लगा। इस शॉक की चिकित्सा संभव नहीं।

"क्या हुआ, बुआ ?"

गोविन्द का जैसा स्वभाव है, उसके लगा कि यह सब उसके यहाँ न होने के कारण ही हुआ है। उसने खुद को दोषी ठहराया।

"अरे गोविन्द ! भले के लिए गयी थी, इसीलिए बुरा हुआ। मेरी आँखें...।"

आंदी हाहाकार कर रो उठी। गोविन्द ने महसूस किया कि उसकी आँखें भी गीली हो गयी हैं। आंदी की पुतली और उस पर की सफ़ेदी अलग-अलग नहीं पहचाने जा सकते। यह देख कर उसकी आँखें क्रोध से जल उठीं।

"क्या हुआ ?" बड़ी बहू गोबर सने हाथों से आगे आयी। सास को धमकाया, "रोने को मना किया है न डाक्टर ने ? रोना नहीं।"

"रोऊँगी नहीं ? आँखें गयीं तो रोऊँ भी नहीं ?"

"न रोओ। गोविन्द आ गया है, सारा इंतज़ाम हो जायेगा।"

"नहीं रोऊँ ?"

"नहीं। कहा तो कि हाथ के अंदाज़ से धागे लपेट दो।"

"मुझसे नहीं होता रे !"

"होगा। कौन कहता है कि तुम काम नहीं कर सकतीं ? तब यह बताओ कि गोबर से गुल किसने बनाया ?"

बड़ी बहू की बात ने जादू का काम किया। आंदी ने आँखें पोंछीं और धागे लपेटती रही। आँखों से आँसू बहते रहे। गोविन्द ने उधर देखा। बड़ी बहू ने सूखे गले से कहा, "अब यह रो नहीं रही। एक बार रुलाई आने पर देर तक आँसू गिरते रहते हैं।"

"क्या हुआ, पद्म बहू ?"

बड़ी बहू ने गोबर थापते-थापते कहा, "अस्पताल में कहा था कि आपरेशन होगा। हुआ। इनायत ने ख़बर भेजी थी। नोदा और बड़े जेठ इन्हें लेकर गये थे। उन्होंने देखकर कहा कि यह मोतियाबिंद नहीं है। माँ की आँखों की शिरा टूट गयी है। अगर यह बूढ़ी नहीं होती तो आपरेशन हो सकता था। उन्होंने दवा दी, आँखों में डालने के लिए। कहा, यह धुंधलापन अब हमेशा रहेगा। तमाम उम्र। माँ के रोने-गाने पर उन्होंने बताया

कि काट-पीट करने पर माँ की आँखों में थोड़ी भी रोशनी नहीं रहेगी।"

"यह हुआ कैसे ?"

बड़ी बहू ने ठंडी साँस भरी। बोली, "बतासी ने माँ को समझाया कि जाबुदपुर के हाट में पता नहीं कौन आता है। आँखें देखता है, चश्मा देता है।"

यह सुनने पर बड़ा लड़का क्रोधित हो उठा। बोला, "अस्पताल में डॉक्टर कुछ नहीं कर पाये तो वह क्या करेगा ? अंधी हो जायेगी तू। ऐसा काम मत करना।"

"उसके बाद ?"

"बतासी के साथ सलाह करके चली गयी। घर में किसी को नहीं बताया, किसी ने नहीं जाना,। 'प्राण नटकर नारियल की छाल उतरवा रहे हैं। चटाई के लिए ले आती हूँ,' कह कर वह चली गयी। मुझे भी कुछ नहीं पता चला। मूढ़ी भून रही थी। चावल बनाते-बनाते माँ तो चली गयी। वहाँ उस आदमी ने दो रुपये लिये। और पता नहीं, कौन-सी दवा दी कि आँखों में डालते ही वह लोट-पोट होते हुए चिल्लाने लगी, 'आँखों में मिर्ची लग रही है। आँख जल रही है।' बतासी वहाँ से भाग आया। समझे तुम ?"

"उसके बाद ?"

"आँखें धुलवायीं। कबरेन के घर से रो-पीट कर थोड़ा-सा पद्‌ममधु ले आयी। वही डाला। कमल के पत्ते से आँखें ढँकीं, पोखर में से कीचड़ लाकर आँखों पर रखा तो कुछ शांति हुई। दूसरे दिन बैलगाड़ी पर बैठकर नश्कर के अस्पताल ले गये। आँखें फूलकर ढोल बन गयी थीं। खोल भी नहीं सकती थीं। डॉक्टर बोला—दवा से पुतली जल गयी है। अब कुछ नहीं हो सकता। मलहम दिया है। कहने लगा कि अब कुछ नहीं हो सकता। तामली में एक अच्छा डॉक्टर है, वही कुछ कर सकता है। यहाँ कुछ नहीं होने का।"

"उस आदमी को पकड़ नहीं सके ?"

"बड़े जेठ दो बार हाट गये, पर वह मिला नहीं।"

"अब यह तुम्हारे ऊपर...?"

"क्या रूँक ? फेंक दूँ ? मुझे पाँच बरस की लेकर आयी थी। मोया

और मूढ़ी खिलाकर पोसा है। उसकी आदत है पाँच लोगों की बात पर नाचना। बतासी की बात पर हाट जाकर...।"

गोविन्द बोला, "ठीक है, देखता हूँ। ऐसी हालत में यह तामली जायेगी कैसे ?"

"देखें, क्या होता है ?"

"ठीक है, देखा जायेगा। नन्द को मेरे पास भेज देना।"

गोविन्द ने नन्द से कहा, "एक नियम जाना है मैंने। यहाँ अस्पताल में अगर वे इलाज नहीं कर सकते तो सदर से डॉक्टर बुला सकते हैं। वही करें।"

"बुआ को तामली ले जायेंगे क्या ?"

"तुम्हारा कहना सुनेगी ?"

"देखते हैं।"

डॉक्टर ने गोविन्द की बात धैर्य से सुनी। फिर बोले, "उसे क्या हुआ है, जानते हो ?"

"जानने पर डॉक्टर बन जाता।"

"बहुमूत्र के बारे में जानते हो ? ऑपरेशन मुश्किल है। उस पर आँखों में घाव।"

"आप सदर से डॉक्टर बुलवायें। ऐसा ही नियम है।"

"तुम क्या सचमुच उसकी चिकित्सा कराओगे ?"

"मैं क्या मज़ाक कर रहा हूँ ?"

डॉक्टर कुछ क्षण सोचते रहे। फिर बोले, "नियम से तो मैं डॉक्टर बुला सकता हूँ। पर डॉक्टर आयेगा, यह ठीक नहीं है। पहले दो बार बुला चुका हूँ, नहीं आया। तामली का अस्पताल अच्छा है। डॉक्टर सरकार एक अच्छे डॉक्टर हैं। रविवार को उन्हें ले आओ। चिट्ठी लिख देता हूँ।"

"सदर का डॉक्टर क्यों नहीं आयेगा ?"

"नश्कर बाबू जानते हैं।"

"हेदो नश्कर ?"

डॉक्टर सूखे गले से बोले, "टेंडर उन्हीं का है। दूध के नाम पर पानी, सड़े अंडे, मछली के नाम पर सड़े कपड़े, चावल के नाम पर भूसी सप्लाई

करते हैं। मैंने कहा था तो उन्होंने सदर में मेरी ख़िलाफ़त की। अब तो पता नहीं, मैं कितने दिन यहाँ रहूँगा ? दूसरे डॉक्टर को लाने की चेष्टा कर रहे हैं।"

"आप देखकर दूसरा डॉक्टर बुला भेजिये।"

गोन्विद, हेदो नश्कर के पास आया। बोला, "अस्पताल ठीक से चले, यह देखना भी मेरे काम का अंग है।"

"इस डॉक्टर के रहते ठीक चलेगा ?"

"डॉक्टर ख़राब है, ठीक है। आप तो अच्छे हैं न ! अस्पताल में सड़ा-गला माल क्यों भेज रहे हैं ?"

"सरकारी रेट जानते हो ?"

"जानता हूँ। सरकारी रेट जानकर ही आपने कॉन्ट्रैक्ट लिया है। उसी रेट पर तामली में अच्छा माल कैसे जा रहा है ? वहाँ दूसरा आदमी है। साधन दत्त आपकी तरह क्यों नहीं करता ? आप हैं, इसीलिए किसी दूसरे ने टेंडर नहीं दिया।"

"क्या कहते हो, गोविन्वद ? अच्छा समझकर ही काम हाथ में लिया था। डॉक्टर की बात सुनकर ऐसा कहते हो।"

"धमकाता नहीं हूँ। माल अच्छे दीजिये, चाचा ! और हमारे डॉक्टर की चुगली मत खाइयेगा। आदमी बीस-बीस घंटे खटता है। उसे हटाने की कोशिश मत कीजिथेगा।"

"धमकाते हो, गोविन्द ?"

"सदर में मेरी भी जान-पहचान है। एक भी अच्छी दवा आये तो वह आपको देनी होगी। कम्पनी के लोग जो दवा दे जाते हैं, आप ले लेते हैं। यह क्या बात हुई ? हमेशा अपना ही लाभ नहीं देखना चाहिए।"

"आ-हा... मैं सब-कुछ तो देखने नहीं जाता। कौन क्या देता है, मुझे क्या सपने आते हैं ?"

गोविन्द की धमकी से कुछ काम बना। अस्पताल में खाने-पीने के सामानों की क्वालिटी सुधरी। लेकिन सदर से डॉक्टर नहीं आया।

तब गोन्विद सदर गया। उन्हीं लोगों के हवाले से वह आँखों के डॉक्टर के पास पहुँचा, जिनके बारे में ख़याल था कि डॉक्टर उनकी सुनेगा

कर आ रहा हूँ।"

गोविन्द पोखर की तरफ़ चला। डेढ़ मील दूर। पेड़ के नीचे हेदो नश्कर और डॉक्टर, बंसी डालकर बैठे हैं। चारों तरफ़ शांत और सुन्दर प्रकृति। बाबू लोगों को असुविधा न हो, इसलिए एक लड़का दूर भैंस नहला रहा था। शालफूल के ऊपर जल-मुर्गी उड़ रही थी।

"बंसी एक तरफ़ रखिये। अस्पताल चलिये।"

गोविन्द के चीख़ने पर दोनों चौंके।

हेदो नश्कर बोला, "चलते हैं, चलते हैं। थोड़ी मछली पकड़कर...।"

"अभी पकड़वाता हूँ मछली। साला, इतना हरामीपन, इतनी बद-माशी! रोगी मर रहा है...डॉक्टर मछली पकड़ रहे हैं! इसे तो पकड़ कर पीटना चाहिए। तभी ठीक होगा।"

"जाता हूँ। जाता हूँ।"

"अभी तुरत उठिये। साइकिल पर बैठा कर ले जाऊँगा। बाँधकर रख दूँगा पेड़ से। सदर में प्राइवेट प्रैक्टिस, यहाँ मछली पकड़ता है! सर चढ़ गया है।"

"सुनो, गोविन्द...।"

"आप बीच में मत बोलिये। आपको भी अब नहीं छोड़ूंगा मैं, चाचा! बड़ी ग़लती की आपने। अगर मुझे क्रोध आ गया तो...तो गाँव-इलाके में हंगामा खड़ा कर दूँगा। पार्टी-फार्टी की भी नहीं सुनूँगा। आपको भी सम-झने का समय आ गया है।"

भयभीत और त्रस्त डॉक्टर को साइकिल के डंडे पर बिठाकर ले आया गोविन्द। अस्पताल के डॉक्टर से कहा, "इनकी डॉक्टरी का अन्त आ गया है। इसी कारण सोना डॉक्टर की लाश मिली थी रेलवे लाइन पर। शैतान की औलाद! आया है रोगी देखने—पहुँचा पोखर पर मछली पकड़ने! नश्कर को पहचानता है। पहचनवाता हूँ अभी! सदर में लड़के हैं कि नहीं? अस्पताल से घर जाता है कि नहीं?"

सदर का डॉक्टर भयानक भय से उत्पीड़ित हो उठता है। उसने वचन दिया कि वह खूब सावधानी से आंदी को देखेगा।

"देखेगा नहीं...उसका बाप देखेगा," कह कर गोविन्द शर्ट खोल कर

हवा खाने लगा।

आंदी को भीतर ले जाया गया। काफ़ी देर परीक्षण करने के बाद सदर का डॉक्टर अचानक कर्त्तव्यपरायण हो उठा। वह अस्पताल के डॉक्टर से बोला, "ऑपरेशन।"

"करेंगे ?"

"हाँ। समझते हैं। अभी ऑपरेशन करें तो सेपसिस का फोकस...।"

"आँख खराब नहीं हुई है।"

"दाहिनी आँख तो वैसी ही है...पर इंफ़ेक्शन है। ऑपरेशन न करें तो...।"

"यहीं ?"

"जैसी भी व्यवस्था हो, यहीं करना होगा।"

"कैसे ?"

"मैं सदर जाता हूँ। सब ज़रूरी सामान साथ ले आऊँगा।"

गोविन्द बोला, "यह नहीं होगा। आप यहीं रहेंगे। मेरा नाम गोविन्द दास है। जो ज़रूरत है लिख दीजिये, मैं ले आऊँगा।"

अस्पताल के डॉक्टर बोले, "रुपये।"

सदर का डॉक्टर बोला, "बेटा, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। जो लेना होगा अस्पताल या घर से ले लूँगा। एक बार कह भी आऊँगा। विश्वास नहीं है क्या ? साथ चलता हूँ।"

"रुकिये।"

साइकिल लेकर नश्कर के घर गया गोविन्द। हेदो नश्कर तब भी नहीं आया था। नश्कर के बेटे से बोला, "बेन्दा, पचास रुपये दे। चाचा से कह देना, मैं ले गया हूँ।"

वृन्दावन सब जानता है। बग़ैर कुछ कहे उसने रुपये दे दिये। गोविन्द बोला, "कह देना, ग्राम कल्याण फ़ंड से लिये हैं।"

रुपये ले आया गोविन्द। बोला, "चलिये। आज ही लौट आयेंगे। डेढ़ घंटे बाद ट्रेन है।"

"कल लौटें तो ?"

"नहीं।"

"रात को...।"

"गैस-बत्ती जला देंगे।"

सदर का डॉक्टर असमंजस में था। फिर भी गोविन्द के साथ चला। विपत्ति, महाविपत्ति। पार्टी का लड़का अगर ऐसा करता तो... कलकत्ता में तो वे काट दिये जायेंगे।

अस्पताल के डॉक्टर ने आंदी से कहा, "बूढ़ी माँ! तुम्हें भरती कर लेता हूँ, समझी! कुछ खाओगी? दवा देता हूँ, पीने पर नींद आ जायेगी।"

"भरती करोगे?"

"हाँ।"

एक गन्दे बिस्तरे पर आंदी को जगह मिली। नन्द स्टेशन से चाय और पावरोटी ले लाया। माँ को खिलायी। डॉक्टर ने उसे दवाएँ दीं और माफ़ी माँगने के अन्दाज़ में नन्द से बोले, "मैं भी थोड़ा सिर पर जल डाल आऊँ। कुछ खा आऊँ। गोविन्द जब साथ गया है तो डॉक्टर जरूर आयेगा। ऑपरेशन भी होगा, पर मुझे भी तो काम करना पड़ेगा।"

"आप जाइये।"

नन्द बकुल की चटाई पर लेट गया। आंदी की आँखों में नींद उतर आयी। उसने हाथों से टटोला। खाट पर लोहे की रस्सियाँ है। आँखों का क्या होगा, उसे याद नहीं रहा। वह अब अस्पताल में भरती है। अस्पताल में अनेकों तरह की चीजें खायेगी। सदर से डॉक्टर आयेगा। "सब रूप-कथा जैसा ही हो रहा है...एक के बाद एक!" वह सविस्मय अस्फुट बुदबुदाती है। रूप-कथा की तरह नींद में उसका चेहरा अत्यन्त तृप्त दीख रहा है।

मूर्ति

छातिम ग्राम के शहीद दीनदयाल की काँसे की मूर्ति की स्थापना करने का संकल्प कलकत्ता महाधिकरण ने किया था और मूर्ति-स्थापना काफ़ी धूम-धड़ाके, बाजे-गाजे के साथ होगी, यह बात समाचारपत्रों में भी छपी। लेकिन छातिम ग्राम के लोग स्वभाववश ही यह नहीं जान पाये। ग्राम तो 'फ़ॉर फ्रॉम मैडिंग क्राउड' है और सरकारी जंगल-महल के प्रांगण में है। लैटेराइट मिट्टी। कम उपजाऊ। फलतः इस मिट्टी के द्वारा ज़्यादा लोगों का भरण-पोषण नहीं हो सकता। छातिम और उसके साथ के सात गाँवों की जनसंख्या तीन हज़ार से भी कम है। आदिम जातियाँ और उपजातियाँ रहती हैं यहाँ—संथाल, और मुंडा वग़ैरह। अनुसूचित जातियाँ भी हैं—भुइयाँ, हाड़ि, मोची, गूंड़ी, बाउरी। यही हैं यहाँ की जन-संख्या। इन आठों गाँवों में साक्षर लोग तीस से ज़्यादा नहीं होंगे। जो साक्षर हैं, वे भी निरक्षरों की तरह पेट के धंधे में व्यस्त हैं। समाचार-पत्र न कोई रखता है, न कोई पढ़ता है। निकटस्थ थाना ग्यारह मील दूर है। महकमा-शहर सात मील दूर। वहीं ब्लॉक डेवेलपमेंट ऑफ़िस, पोस्ट-आफ़िस, जंगल-ऑफ़िस, स्वॉयल वर्कर ट्रेनिंग ऑफ़िस, स्कूल-सब-इंसपेक्टर का ऑफ़िस, हेल्थ सेंटर, धान-गोला या कोठारी और कृषि कार्यों के लिए स्थापित केन्द्र हैं। यानी पूरा उद्देश्यपूर्ण पेराफ़रनेलिया है।

सिनेमा-हॉल मौसमी है। शहर के मदन ख़ाँ (अब स्वर्गवासी) ख़ूब नामी-गिरामी थे, बड़े धनी पुरुष थे। लाख के व्यापार में वे काफ़ी धनी हुए। दुष्ट लोग कहते हैं, उग्रवादी दीनू ठाकुर को पकड़वाने पर मदन ख़ाँ के पिता बदन ख़ाँ को साहेब लोगों से काफ़ी पैसे मिले थे। और उसी से

उन्होंने लाख का व्यापार शुरू किया। मदन के हाथों पड़कर रुपया दुगना हो गया। क्यों न होता ? '47 के बाद की सरकार ने मदन को देश-सेवी क़रार दिया। देश-सेवा के पुरस्कार-स्वरूप जैसे छप्पर फाड़कर लाइसेंस-परमिट मिले। दारू की दुकान से लेकर बस-सर्विस तक के परमिट। देश-सेवा न करने पर भी देश-सेवा का पुरस्कार तो मिलता ही है। तभी वह फलाहारी बाबा को आम, सेव, केले इत्यादि की गुँथी मालाएँ पहनाने का सुफल मानता है। उसके मन में अचानक खुद को अमर करने की इच्छा जागी। और इसी वजह से उसने बहुत-से ऐसे काम किये जिनसे शहरवासी लाभ उठाते हैं। जीवितावस्था में ही उसने मदन मेमोरियल व्वायज़ स्कूल, मदन स्मृति बालिका विद्यावीथि,मदन खाँ फुटबॉल मैदान इत्यादि बनवाये। एक छह बिस्तरों का हस्पताल भी बनवाया। सब जगह अपनी ही तसवीर को खुद माला पहनाकर वह उद्घाटन करता था। एक बार शहर के चतुर लड़कों ने उसे 'महान देश-नेता' क़रार देकर फुसलाया और 'रवीन्द्र सदन' बनाने पर राज़ी किया। मदन खाँ तुरंत राज़ी हो गया। पर हॉल के आधा बनते-बनते ही बोला, "हमारे पैसे से बने हॉल में हमारा नाम नहीं होगा ? उसका नाम होना चाहिए—मदन-रवीन्द्र हॉल।"

इस स्टेज पर कुछ लोग आगे आये और मदन खाँ को समझाया कि रवीन्द्रनाथ के नाम के पहले 'मदन खाँ' उचित नहीं है।

मदन बोला, "ठीक है, अब ज्यादा झिकझिक मत कीजिये। नाम रहे रवीन्द्र-मदन हॉल। ठीक ?"

हॉल पर टीन की छत डाल दी गयी। छत पड़ते-न पड़ते उसका दिमाग़ फिर पलट गया। उसने अपना मोमेंटरी डिसीज़न सुना दिया। बोला, "रवीठाकुर को लेकर तो बहुत-कुछ बना है। मैंने निर्णय किया है कि हॉल का नाम, मेरे नाम पर ही होगा। और जानते हो कि मैंने अपनी मूर्ति बनने के लिए दे दी है। अगले साल 1961 में वैशाख की पूर्णिमा को उसका अनावरण कर दूंगा।"

अब कितनी भी रिमोट जगह हो, है तो वह जगह पश्चिम बंगाल में ही। शहर के बाशिन्दे बड़े चक्कर में पड़े। रवीन्द्र-जन्म शत-वार्षिकी के अवसर पर मदन खाँ के हाथ से 'मदन खाँ-हॉल' का उद्घाटन होगा, यह

ठीक नहीं है। उनके सर घूम गये।

मदन ख़ाँ बोला, "ज़्यादा हंगामा किया तो इस हॉल को धान का गोदाम बना दूँगा।" पर उसकी यह इच्छा फलवती नहीं हो सकी। क्योंकि वह अचानक ही मैनेंजाइटिस का शिकार होकर महा-प्रयाण कर गया। वह हॉल ही अब 'रवीन्द्र हॉल' है। इसे ही मौसमी सिनेमा-हॉल भी कहते हैं। धान काटने पर किसानों के हाथ में जब पैसे आते हैं तो वहाँ सिनेमा दिखाया जाता है। बाक़ी समय में हॉल में शहर की सभा-समितियाँ, जात्रा और अन्यान्य सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं।

अगर शहर की यह अवस्था है तो छातिम ग्राम में कोई समाचारपत्र पढ़े, यह आशा करना ख़ामख़याली ही है, वैसे ही जैसे बँगला मोशन पिक्चर में मोशन देखने की दुराशा करना। छातिमवासी नहीं जानते कि उनके गाँव की ठाकुर-बाड़ी के दीनदयाल ठाकुर की मूर्ति की स्थापना और उसका अनावरण होने वाला है।

छातिम ग्राम के ठाकुर लोग सरकारे-ख़ास व्यक्ति हैं। कारण है दीनदयाल। 1924 में दीनदयाल खड़गपुर के पास ट्रेन-डकैती में पकड़ा गया और बन्दी बनाया गया। शेष अवधि कटी—फाँसी-घर में। पुलिस ने उसके माँ-बाप, बहन-भाई पर अकथ अत्याचार किये और उन्हें गाँव से निकाल दिया। ज़मीन-जायदाद भी ज़ब्त कर ली। छातिम के लोग यह भी नहीं जानते कि दीनदयाल की मृत्यु के समय उसकी बहन सिर्फ़ दो वर्ष की थी और उसका ससुर अब दीनदयाल का एकमात्र जीवित सम्बन्धी होने की वजह से पेंशन पाता है।

वस्तुत: छातिम ग्राम के साथ दीनदयाल का कोई सम्पर्क था—यह छातिमवासी भूल गये हैं। लैटेराइट मिट्टी में किसी तरह धान उगाना, जंगल में शाल पेड़ के 'फ़ैलिंग' के ठेके पर काम करना, यदा-कदा मदन ख़ाँ के पुत्र सदन ख़ाँ के खेत में मजूरी करना। इसी तरह के दुखद संग्राम में उनकी जिन्दगी कटती है। आच्छन्न चिरांधकार में पड़े इस दरिद्र गाँव में कुछ भी नहीं है। क़रीब में कोई हेल्थ-सेंटर, गाँव में पीने के पानी का कुआँ, हाट वग़ैरह कुछ भी तो नहीं है। गाँव देखकर यह अनुमान भी नहीं लगता कि इसके केवल सात मील दूर ही उद्धत हाइ-वे है। बयालीस मील

दूर खड़गपुर स्टेशन । पर यहाँ है—आंदोलित भूमि, छोटे पहाड़, बौने शाल के पेड़, बेशुमार ग़रीबी । हाट भी लगती है सोम और शुक्र को, चार मील दूर। हाट में नमक-मिर्च, चावल, मोटा कपड़ा, झिलमिल गमछा, दाद-मलहम, दाँतशूल की दवा, प्लास्टिक के खिलौने, तेल का सिंघाड़ा और गुड़ की जलेबी मिलती हैं ।

छातिम और दूसरे गाँवों के बूढ़ों की आँखों में जाला उतरने या वयस्कों की आँखों से कम दीखने की स्थितियों में वे हाट पहुँचते हैं। तूफान मुल्ला खुद भी अपनी ही बनायी निकेल की ऐनक पहनता है और दूसरों के लिए भी बनाता है—मात्र चार रुपये में। सूरेन हाती, पदम काँटा और सनारूर काँटे से छैनी काटता है। बीच-बीच में सरकारी आदमी चोंगे पर गला फाड़ कर चिल्लाया करते हैं—परिवार-नियोजन के बारे में। बिना मूल्य उक्त विषय पर हिन्दी-बँगला-अंगरेज़ी में सरकारी लिटरेचर भी वितरित करते हैं। कागज़ को ये निरक्षर गोल-गोल तोड़-मोड़कर रख लेते हैं। मोदी की दुकान पर बेच आते हैं। अगर तसवीर हुई तो घर ले जाते हैं, दीवार पर चिपका देते है। उनके हिसाब से, माँ-बाप, लड़की-लड़के की सरकारी सुखी परिवार की तसवीर वस्तुतः भारत की प्रधानमंत्री, उनके पति और उनकें पुत्र तथा पुत्री की तसवीर है। इसी से समझा जा सकता है कि ये कितने घोर अन्धकार में हैं। वे महिला का फ़ैमिली स्ट्रक्चर भी नहीं जानते। इतने ही ज्ञानी हैं वे !

दीनदयाल ठाकुर शहीद हैं, यह भी छातिमवासी नहीं जानते। हाँ, ठाकुर-बाड़ी ज़रूर है। ठाकुर नहीं हैं। वहाँ एक कुआँ है, जिसमें चैत-बैशाख में जल रहता है। पानी कोई लेता नहीं। चारों तरफ़ झाड़ियों का जंगल हो गया है। एक बड़ा अजगर वहाँ रहता है। एक-दो बकरी के बच्चे खा गया है। क्यों ? ठाकुर-लोग जाते वक़्त इस साँप को चौकीदारी करने को कह गये हैं।

छातिमवासी पहले भी ग़रीब थे, यह वे भूल गये हैं। गाँव के चिर-अन्धकार की अवस्था-जनित स्थिति के कारण ही वे ठाकुर-परिवार के संत्रास की बात भूल गये हैं। ठाकुर-परिवार का ग्राम-त्याग और दीनदयाल को फाँसी—बात 1924 की है। चौवन साल पहले की घटना अब अन्य

लोकगाथाओं की तरह किंवदन्ती होकर रह गयी है। लेकिन इस कथा के विभिन्न 'वर्ज़न' हैं।

छातिम गाँव के बूढ़े संथाल, माँझी दासू सोरेन का 'वर्ज़न' इस प्रकार है—कई चाँद पहले यहाँ से कर्णावती नदी बहती थी। यहाँ था भुइयाँ राजा। राजा के लड़का-लड़की नहीं थे। राजा को संतान-हीन कहकर एक भिखारी ने भिक्षा नहीं ली, जिससे राजा अत्यन्त दुखी हुआ। राजा ने रानी से कहा, 'चलो, कर्णावती के पानी में ही डूब मरते हैं।' पति-पत्नी दोनों चले, राजपाट छोड़कर मरने। रास्ता तो जैसे ख़त्म होता ही न था। रानी ने कहा, 'देखो, यह ज़रूर किसी देवता की माया है। घर की छत से रोज़ ही नदी का जल देखती हूँ। पूजा-त्योहार के दिन नदी में स्नान करती हूँ। रास्ता तो इतना लम्बा नहीं है।' राजा भी आश्चर्यचकित थे।

हठात सामने दिखी एक भव्य देवी। देखते ही राजा और रानी ने साष्टांग प्रणाम किया। देवी बोलीं, "मैं मनसा देवी हूँ। आत्मघाती मत बनो, घर लौट जाओ। तुम्हारे पुत्र होगा। यहाँ मेरा 'थान' बना देना। सावन की संक्रांति में मेरे थान पर घड़े रखना, घर-घर में मेरी पूजा हो। लेकिन तुम बारह महीने मेरे थान पर रोज़ पूजा करना, ब्राह्मण भी रखना।' राजा बोले, 'यह तो जंगल है, यहीं का राजा हूँ। ब्राह्मण कहाँ से मिलेंगे?' मनसा बोलीं, "कल सवेरे उत्तर दिशा में लोग भेजना। एक प्रहर लगातार चलने पर तुम्हें एक ग़रीब ब्राह्मण, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ बरगद की छाया में सोता मिलेगा। ब्राह्मण का भाग्य इतने दिन ख़राब रहा, अब मेरी कृपा से ठीक जायेगा। उसे खिला-पिला कर स्वस्थ करो। उसके बाद वह तुम्हारे राज में एक दिन में जितना चल सके उतनी ज़मीन उसे दे देना। उसकी स्थिति सुधरेगी, तुम्हारी भी बिगड़ेगी नहीं। ब्राह्मण को सम्मान देना, ऐरा-गैरा नहीं है, काशी-धाम का है।' उसी ब्राह्मण के वंश के थे दीनदयाल ठाकुर। भुइयाँ का राज चला गया। अब गृहस्थी करते हैं ठाकुर। तब ही तो गांव छोड़ गये।

यह किंवदन्ती अहिंदु संथाल के मुँह की बात नहीं है। लेकिन दासू सोरेन कहानी कहता है। उसकी कहानी में अक्सर सब-कुछ अलौकिक होता है। इस कहानी के साथ दीनदयाल ठाकुर की कलकत्ता में कांसे की मूर्ति

स्थापित होने की वात मेल नहीं खाती।

नाई रतनदास का 'वर्जन' इस प्रकार है—कर्णावती ने बहुत दिन देखे हैं। भुइयाँ भी कभी राजा थे, ऐसा सुना है। भुईयां के घर में एक कोठाल और एक पट्टा भी है। हमने देखा भी है काफ़ी समय से कि सदानन्द भुइयां एक सपन्न गृहस्थ हैं। 'सीलिंग' के वाद कुछ भी नहीं वचा। अब साल में चार महीने वे भी धान ख़रीदते हैं। हां, ठाकुर लोग उनके पुजारी थे। उनके घर में मनसा की पूजा करते थे। गांव छोड़ते समय सदानंद के वाप महानंद ने विग्रह साथ ले जाने का आग्रह किया था, लेकिन दीनू ठाकुर के वाप ने कहा, 'तुम्हारे विग्रह की पूजा करके हमारा कुछ भी अच्छा नहीं हुआ। मां से माफ़ी माँगता हूँ, मैं चला पूजा छोड़कर।' महानंद भुइयां वोला, 'ये जो सो देवी नहीं हैं, माँ मनसा हैं। सांपों की मां। इन्हें नाख़ुश करोगे?' ठाकुर वोले, 'इन्हीं की पूजा करके जीवन में पुलिस घुसी है। लड़का फांसी चढ़ गया। घर छूट गया। पुलिस ने हमारी औरत-वेटी पर हाथ डाला। अव इससे वुरा क्या होगा? चाहें तो माँ नागों को भेज मुझे निर्वंश कर दें। तुम्हारे साथ मेरा कोई संवंध नहीं है।' तव क्या हुआ, जानते हैं? पूजित-पूजक में झगड़ा। नहीं, वह विवाद तभी शेष हो गया। दीनदयाल जव मरा, सदानंद आठ वरस का था। अव सदानंद साठ-वासठ का होगा, लेकिन देखने में नहीं लगता। खाया-पीया वहुत है। शरीर में कांति है। सदानंद खुद वड़ा लिजलिजा है। पर लड़का, नवीन अच्छा है। उसे हम पंचायत में भेजेंगे।

छातिम बड़ा अभागा गाँव है। सरकार भी जैसे नहीं जानती कि छातिम नाम का कोई गाँव भी है। नवीन आठवीं जमात तक पढ़ा है। महकमा-टाउन जाता है। दरख़ास्त-अर्ज़ी भी देता है। तभी तो इस साल बीज और खाद मिले हैं। वह चेप्टा कर रहा है कि गाँव से होकर वस के लिए एक पक्का रास्ता हो जाये। हमारे इन सात शापित और अभागे गाँवों के लिए एक हेल्थ-सैंटर भी छातिम में बनेगा। धान और अन्य कृषि सेंटर भी यहाँ विठायेंगे। पचास-साठ-सत्तर हज़ा...र रुपयों का काम है। लड़का अच्छा है, नाचता है नाचे। मैं जानता हूँ, कुछ भी नहीं होगा। चिरकाल से

गाँव ऐसा ही है। वाप, दादा, मैं—यानी किसी ने नहीं देखा कि गाँव की अवस्था कव अच्छी थी। दीनदयाल ठाकुर के फाँसी चढ़ने से, ठाकुर-भुइयाँ के दिमाग़ पलटने से, क्या गाँव का पतन हुआ ? नहीं, नहीं, नहीं। चिरकाल से ही यह पतन चल रहा है, वावू। मैं तो हाट के दिन हजामत का काम लेकर खड़गपुर जाता हूँ। और पाँच गाँ-ग्राम कैसे वदल गये ! वह तेमुखी ग्राम कैसा वदल गया ! एम० एल० ए० का गाँव है। वे एम० एल० ए० भी इस अभागे गाँव को नहीं देखते। गाँव अच्छा था, दीनू ठाकुर के कारण वरबाद हुआ, यह वात कोई कहता है तो वह है सदानंद भुइयाँ। उनका झगड़ा क्यों हुआ, यह मैं नहीं जानता। मैं तव था ही कितना बड़ा !

लेकिन रतनदास के 'वर्ज़न' में भी यह वात खुलकर सामने नहीं आ पाती कि आखिर ठाकुर पर सरकार की नज़र पड़ी क्यों ?

सदानंद भुइयाँ का 'वर्ज़न' खूब ट्विस्टेड और अहंपूर्ण है। अव 'ताल पुखुर' नाम में जो होता है, वही है। चार खंडों का वड़ा-सा घर, दो गोला-घर, तीन जोड़ी बैल। खूब खींच-खाँच के साथ दुनिया को दिखाते हुए वह वोलता जाता है—

अब यहाँ से जितनी दूर तक आप देख सकते हैं वहाँ तक का इलाक़ा सारा हमारे पूर्वजों का था। मानसिंह का नाम सुन लीजियेगा। उसके अमले परगना के वज़ीर की सहायता मेरे पूर्वजों ने की थी। वज़ीर ने उन्हें राजा का खिताव दिया। और पता नहीं, क्या-क्या ! तलवार है उनके पास। सुना है, मूठ सोने की थी। हमने देखा नहीं। पट्टा है, पढ़ना मुश्किल है। राजा ही हैं हम, अब छोटे हो गये हैं। लेकिन अब यह सब कहने से कोई लाभ नहीं। लड़का तक नाराज़ हो जाता है। राजा थे, इसी वजह से तो इतने कष्ट हैं। पंद्रह बीघा धूर ज़मीन का राजा ! वेटा बड़ा विगड़ैल है। दिमाग़ का तेज़। बटाईदारों के साथ खेती करता है। शादी नहीं की अभी। कहता है, उम्र नहीं हुई अभी। उसके बाद वाला तो आदमी हो गया है। अपने हाथ से खेती नहीं करता। शादी भी की है, दो बच्चे भी हो गये हैं। काम ? काम क्या करेगा ? हमारे लोग हर महीने देवी की पूजा कराते हैं, पुरोहितों के चले जाने के बाद से। प्रत्येक महीने यही छोटा लड़का

साइकिल से पाटक गाँव से ब्राह्मण लाकर पूजा कराता है। बड़े लड़के का मन इन सबकी ओर नहीं है। बेटा बड़ा कच्चे दिल का है। बतख़ मर जाये तो रोयेगा।

छोटे लड़के की चले कैसे ? क्यों ? मनसा का मेला तो हमारा ही है ? उस दिन जितने हंस और पाठे चढ़ेंगे, सब में भाग मिलेगा। पंद्रह दिन मेला चलेगा। उसका रोज़गार है। राजा होकर आज हमारी यह अवस्था क्यों है ? उसी दीनू ठाकुर के कारण। ख़ूब दबदबा था हमारा। ठाकुर हमारे पुरोहित थे। हमने उन्हें भी पचास बीघा ज़मीन दी थी। अब तो ठाकुरों का घर जंगल है। पर मैंने अपनी आँखों से देखा है। य...ह दोतल्ला, बड़ा-सा घर। हमारे यहाँ की मिट्टी धीरे-धीरे सूखी है, धूप खाकर। पच्चीस बरस कुछ नहीं हुआ। बड़ा-सा घिरा दालान, बैठक। ऊँचान के ऊपर गोला-मराई। रसोई-घर, पानी का इंतजाम। सूखी लकड़ी। बड़े भोज का इंतज़ाम। गोहाल और घर को घेरते हुए सींकचों का बाड़ा। फूल-बागान। पीछे अमरूद, पपीता और फलों की बाड़ी। उनके द्वारा प्रतिष्ठित राधा-गोविन्द की मूर्ति और ठाकुर-बाड़ी।

क्या शोभा थी ! सब हमारी दौलत के कारण। क्या इसकी मर्यादा उन्होंने रखी ? नहीं। सभी जानते हैं, छपी किताब भी है। बारह आना दाम है, हम ही बेचते हैं। सब जानते हैं, माँ मनसा हमारे पूर्वजों से कहकर उन्हें गाँव में लायी थी। ग़रीब भिखारी थे। यह क्या सोचा ? मेरे पिता 'यह देवता, वह देवता' कहकर चिल्लाये, तब भी वे मूर्तियाँ नहीं ले गये। केवल अपने 'राधा-गोविन्द' को ले गये। पुजारी क्या देवता को फेंक जाते हैं कभी ? (यहाँ तक कहानी पहुँचते-पहुँचते सदानंद उत्तेजित हो उठते हैं, बार-बार पसीना पोंछने लगते हैं।)

तब पिताजी पाटक गये थे। नये पुजारी को लाकर पूजा करायी, माँ से माफ़ी माँगी। सारी व्यवस्था की। ठाकुर-कुल की माँ मनसा उग्र चंडी हैं। उनके क्रोध में ठाकुर बरबाद हुए। फिर हमारे पूर्वज मरे सर्पदंश से। और देखिये, गाँव में पुलिस आयी। कितने ज़ुल्म हुए ! घर-घर में ज़ुल्म। सिर पर चढ़ बैठे। भुइयाँ लोगों को छोड़कर सभी जंगल में छुप गये थे। बाद में, यह जानते हुए कि ठाकुर का कोई नाता-रिश्तेदार नहीं है, ये लोग

पाटक के ज़मींदार से हाथी ले आये और घर धूल में मिला दिया। सब बरबाद कर दिया। ठाकुरों ने एक अजगर को—माँ का ही जंतु है—घर की रखवाली के लिए छोड़ दिया था। वह अब भी है। बीच-बीच में घर छोड़ कर बाहर निकल आता है। कभी बकरी, कभी मुर्गी पकड़ लेता है। बाप रे, गज़-भर मोटा है! मेरे और दीनू ठाकुर के बाप में दुश्मनी की बात कही जाती है। ऐसा कुछ नहीं है। ये सारी बातें कुलकों की मनगढ़ंत बातें हैं। दीनू ठाकुर क्या कोई गाँव में रहते थे, जो उनसे किसी का संपर्क होता? दुश्मनी? नहीं, नहीं। अरे, वह जो ठाकुर के लड़के को फाँसी हुई, पुलिस ने जो ज़ुल्म ढाये, सो दीनू ठाकुर के बाप के मन में संदेह बैठ गया कि शहर के बदन ख़ाँ और मेरे बाप ने दीनू ठाकुर को पकड़वाया है। अगर यह बात सच होती तो मेरे बाप को भी बदन खाँ जितने पैसे मिलते। सब झूठ है। बड़ा लड़का है, तुमने क्यों नहीं अनुशासन में रखा? दूसरों की बात क्या करूँ? मेरा बड़ा लड़का नरेन भी इन सब बातों से परेशान रहता है।

सदानंद भुइयाँ के 'वर्ज़न' से दीनदयाल ठाकुर के विषय में कुछ जाना जा सकता है। थोड़ा, सब नहीं।

नवीन भुइयाँ का 'वर्ज़न' बड़ा संक्षिप्त है।

हाँ, दीनदयाल ठाकुर शहीद हैं, जानता हूँ। 1924 में खड़गपुर ट्रेन-डकैती के सिलसिले में पकड़े गये, फिर फाँसी हुई। कहीं लिखी हो किताबों में, तो बात दूसरी है। मैं नहीं जानता। एक रास्ते की ज़रूरत है हमें। अभी, इसी वक़्त। वह हो जाये तो गाँव के साथ बाह्य जगत का कुछ तो संपर्क स्थापित हो ककता है। रास्ते की बात कह-कह कर हमारे हलक़ सूख गये हैं। कहा है, लेबर की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। बीस-पच्चीस लेबर के चार्ज में ही हम सात गाँव के लोग रास्ता बना लेंगे। संथाल लेबर हमेशा खटने जाते हैं। दासू सोरेन इत्यादि रोड-लेबर की बाबत सब जानते हैं। वे लेबर देंगे। रास्ता ज़रूरी है। तभी गाँव की कोई चीज़, अनाज वगैरह बाहर जल्दी ले जाया जा सकेगा। एक हेल्थ-सेंटर भी चाहिए। अभी भी साँप काटे तो माँ मनसा, हैज़े में बड़ाम माँ, बुखार हो तो जलपड़ा का

भरोसा है। उन्हीं को गुहारते हैं। हेल्थ-सेंटर सात मील दूर है। हमारे गाँव से आगे भी कई गाँव हैं। इस गाँव में अगर हेल्थ-सेंटर खुला तो, उनका भी तो उपकार होगा। ज्यादा नहीं, मात्र सत्तर हज़ार रुपये में, सात मील का रास्ता और हेल्थ-सेंटर बन जायेगा। घर मैं दूँगा। उसमें प्राइमरी बन सकता है। अगर सरकारी मदद मिले तो वह बाँध जो हमारे पूर्वजों ने बाँधा था, हम काट देंगे और सिंचाई करेंगे। दीनू ठाकुर ? हमारे परिवार से दुश्मनी ? दुश्मनी थी, कारण भी था। लेकिन क्यों और क्या हुआ था, यह मैं बता नहीं पाऊँगा। नहीं।

मुझसे ने पूछें। साँप ? उनके घर में ? अरे, सदियों में बाघ-चीता घने जंगल में रहते हैं। साँप नहीं रहेंगे ? हमसे घर की देखभाल करने को कह गये हैं ? कौन जानता है ? जो कहते हैं, शायद वे अजगर के पास जाकर उसी से सुन आये हैं। हमारा राजमहल ? देखा नहीं आपने ? काफ़ी बड़ा है। राजा कुदाल लेकर मेहनत कर रहे हैं और राजपुत्र अपने बच्चे टहला रहे हैं। हमारे गाँव में सबसे ज़रूरी चीज़ है रास्ता, समझे ! स्कूल। पढ़ाई-लिखाई। बरसात में तो लड़के पाटक जाते ही नहीं। रास्ता कीचड़ से भर जाता है। रास्ता अगर हो तो स — ब हो जायेगा।

नवीन भुइयाँ की बातों में अतीत नहीं, वर्तमान का आग्रह है। अपने गाँव के शहीद के बारे में कम आग्रह है। ठाकुर और उनके परिवार के बीच वाले झगड़े के बारे में वह बात नहीं करना चाहता। उसका मुख्य आग्रह है कि सरकार से सत्तर हज़ार रुपये कैसे लिये जायें और मृत गाँव छातिम को प्राचीन और बीसवीं शती की किंवदंती तथा अर्धसत्य की दुनिया से निकाल कर, एक पक्के रास्ते के सहारे वर्तमान से कैसे जोड़ा जाये ? हेल्थ-सेंटर, स्कूल, रास्ता। साइकिल-टेम्पो सभी चलेंगे उस पर। नवीन का आग्रह अतीत के प्रति नहीं।

नवीन का अतीत के प्रति जो आग्रह है, वह एक व्यक्ति के अतीत को लेकर है। वह व्यक्ति है एक वृद्धा। भुइयाँ-बाड़ी की चढ़ाई पार करते ही एक कोठरी है। वहीं वह बैठी रहती है। चेहरा पुराणों वाली मनसा बूढ़ी जैसा। सफ़ेद बाल, फटे कपड़े और क्षीण देह। सिर्फ़ आँखें ऐसी हैं कि बरबस खींच लेती हैं। उसका कमरा बड़ा है। वहीं एक बड़ा-सा मचान भी

है। नवीन इसी घर में आता है। कोई दस साल से। उससे पहले वह भी बुढ़िया को ढेला मारता था और 'डाइन' कहता था। फिर भाग जाता था।

बाद में उसे पता चला कि बुढ़िया डाइन नहीं है। उसी की बुआ है—अपनी बुआ। सुदूर अतीत में इसी बुआ ने विधवा के सफ़ेद कपड़े पहने थे। शिरीष के पेड़ के नीचे खड़े होकर शादी के लिए जाते वर को देखने के फलस्वरूप, सारी घटनाएँ घटित हुई थीं। फिर भुइयाँ-बाड़ी में वह अमंगल-कारिणी के रूप में प्रतिष्ठित हुई थी। उसे जान से न मारकर, ऊँचाई पर बनी ऊपर की कोठरी में रख दिया गया था। बुआ के दोनों भाइयों और भाभियों, नवीन की दोनों बड़ी चाचियों ने कहा था, "इस अशुभ, कुलक्षिणी ननद की छाया पड़ते ही उनके बच्चे मर जायेंगे।"

बुआ सिर्फ़ बैठकर नहीं खाती। जंगल में से वह इस अठहत्तर वर्ष की उमर में भी जलाने की लकड़ी लताओं से बाँधकर ले आती है और उठान पर रख देती है। नवीन की माँ या बहन महीने के अंत में चावल-दाल-नमक-तेल दे देती हैं। साल में दो जोड़ी कपड़े। नवीन इतना ही जानताहै। नवीन ही उसके लिए सिर में लगाने का तेल और तौलिया दूसरी 'दुनिया' से लाकर देता है। सौ कामों के बीच भी वह बुआ की ख़बर लेता रहता है। तभी तो घर के सभी लोग उससे काफ़ी क्षुब्ध हैं। नवीन की माँ उसके चले जाने पर कहती है, "डाइन ने संसार पर राख तो डाली ही, मेरे लड़के पर भी जादू चला दिया है।"

अपने क्रोध को इस तरह ज़ाहिर करने में वे काफ़ी हद तक सफल हैं। नवीन का अपने बाप से झगड़ा है, इस कारण वह ज़्यादातर बाहर ही रहता है और शरीक के घर में सोता है। इसलिए चावल-दाल का परिमाण घटने या कोई भी अनियमितता होने पर बुआ को ही कोसा जाता है। बुआ कोई विरोध नहीं करती। बहुत दिन, बहुत समय बीत गया इसी तरह। अपने प्रति दूसरे के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार का प्रतिवाद करना भूल गयी है। भूख के कारण कष्ट को क्रॉनिक और अमोघ वास्त-विकता के तौर पर स्वीकार कर लिया है।

बहुत—बहुत दिन पहले ही वह शायद उनके लिए मर गयी है। जितनी

भी उसे समझ है, उससे उसे यही लगता है कि घर में वह अवांछित है, कभी-कभी प्रयोजनीय भी है। माँ के तो हरेक साल बच्चा पैदा होता था। संसार बहुत बड़ा था। अब यह सदानंद, बहू और छोटे लड़के—सब उसके ऊपर अत्याचार करते हैं। इसमें आश्चर्य क्या है? जब सदानंद पैदा हुआ था तो उसी की गोद में रहा—वहीं जवान हुआ। माँ सूतिका में थी। अब तो सब-कुछ काल्पनिक लगता है। वह क्या इसी घर की कोई है? अगर अपनी है तो च्युत क्यों है? और यदि ग़ैर है तो घर में क्यों है? अगर उसे कुछ देना नहीं तो देते क्यों हैं? और यदि देना है तो इतनी कम मात्रा में क्यों देते हैं? सब बड़े जटिल प्रश्न हैं। इन सारे प्रश्नों के जाल में वह मानो खुद ही बंदी हो जाती है। फिर खुद को अपने हाल पर छोड़ देती है।

बीच-बीच में उसे खूब व्यस्त देखा जाता है। आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है। सो इसी आवश्यकता के कारण वह यह करती है। उसके घर के एक कोने में एक कुंड बना हुआ है। वहीं वह आग जलाती है। लकड़ी जलाकर कोयला बनाती है। लकड़ी के कोयले जलते हैं और आग भी रहती है। कारण दो हैं—पहला कि दियासलाई की डिब्बी उसके लिए सांसारिक विलासिता है। उसके पास तो कभी पैसे रहते नहीं, सो दिया-सलाई ख़रीदने का प्रश्न ही नहीं उठता। नवीन याद आने पर कभी-कभी माचिस और तेल ला देता है। कभी-कभी ही, रेगुलर नहीं। और उसे याद भी कम रहता है। इसी कारण वह यह समझती है कि माचिस का कोटा बरक़रार रखते हुए आग जलती रखना ज्यादा फ़ायदेमंद है।

दूसरा कारण है कि वह भूखी रहती है—या सिकी पेठा खाती है और फलतः उसके शरीर में कुछ है ही नहीं। आग की आँच उसे अच्छी लगती है। खून तो है नहीं बदन में, इसलिए उसे सरदी काफ़ी लगती है। जेठ-बैसाख में भी वह आग जलाकर बैठी रहती है।

नवीन कहता है—"तुम पागल हो!"

"क्यों? क्या किया मैंने?"

"इस गरमी में आग जला कर बैठी हो।"

"गरमी?"

उसके गले से गरमी जैसे शब्द सूखे फूल की पंखड़ियों-से झड़ जाते हैं।

चक्षु-द्वय निष्पाप होकर चमक उठते हैं और क्षण-भर के लिए वह अद्वितीय सुंदरी लगने लगती है। नवीन को आश्चर्य और ममत्व का बोध होता है।

बोला "बहुत गरमी है, बुआ ! तुम्हारे बदन में अब कुछ बाक़ी नहीं है सो तुम्हें सरदी लगती है।"

बीच-बीच में वह ठाकुर-बाड़ी के घने जंगल में घूमती देखी जाती है। 'देखी जाती है' का मतलब—अजगर ने देखा है। एक समय का फलों का बाग अब जंगल ही तो है। लेकिन वह प्राण-रक्षा के लिए इसी जंगल से फल-फूल, अमड़ा और आँवले लाती है। नवीन जानता है, बुआ को जो मिल जाये, वह खा लेगी। यह बात उसके मन में मिश्रित अनुभूतियाँ जगाती है। अगर उसे आज कोई नौकरी-रोज़गार मिल गया होता तो बाप को गच्चा देकर वह बुआ को लेकर शहर चला जाता। रोज़गार नहीं है, पर क्या कभी न होगा ? अभी तो वह आश्रित है। पर हमेशा तो बैठकर नहीं खायेगा। बुआ इतने कष्ट उठाकर भी इतने दिन ज़िंदा रही, दूसरा कोई होता तो मर जाता। और, कुछ बरस और। तब तक क्या वह ज़िंदा रहेगी ?

बीच-बीच वह मनसा-थान में भी घूमती है। नाना प्रकार से वह जीवन की विविध समस्याओं का समाधान करती है। मनसा-थान में कुछ लोग मनौती मानकर घड़े में दूध-पानी रख जाते हैं। घड़ों को वह जुटाती है। कारण एक ही है। जब उसे अलग किया गया था तो उसे एक हँड़िया और एक कढ़ाई दी गयी थी। वे अब तक टूट चुके हैं। इसी तरह हाँड़ी-संग्रह करके वह अपनी बरतन-समस्या हल करती है। हँड़िया वगैरह मनसा के हैं और मनसा उसी की कुल-देवी है। पर यह बात उसके मन में नहीं उठती। नवीन ने कहा है कि जब नौकरी होगी तो उसके लिए वह हँड़िया-कढ़ाई खरीद देगा।

बीच-बीच में देखा जाता है कि वह चैत मास में संध्या समय गाँव से बहुत दूर किसी के खेत से काली दाल के दाने पटापट तोड़ रही होती है। कारण एक ही है, भोजन-समस्या का समाधान।

तब वह बड़ी अपार्थिव लगती है। क्षीण काया, सफ़ेद बाल, चैत की

हवा और आंखों में अद्‌भुत चमक। सोचता है, बुआ ने ज़िंदगी-भर ताड़ना सही है। ये सारी बातें वह समझ पैदा होने के समय से सोचता रहा है।

पर वह अतीत की बात नहीं सोचती। नवीन जिस तरह वर्तमान में विश्वास रखता है, वह भी वर्तमान की ही सोचती है। स्वप्निल आंखों से वह सोचती है, कालीदाल के दाने चुन कर, आंचल में बांधकर रखेगी और फिर बड़ी देर तक बैठकर अंधेरे में खायेगी। वस्तुतः उसकी सारी चिंता-धारा उदर-केंद्रित है। वह सपने देखती है, बड़े ही गहरे सपने। सपने में वह सुंदर कपड़े पहन कर कांसे की थाली में भात खाती है। भर थाली। रोज़। सिर्फ़ भात। दाल नहीं, तरकारी नहीं। सिर्फ़ भात।

1924 में दीनदयाल का शहीद होना, ठाकुर-परिवार का निष्कासित होना, भुइयों के साथ झगड़ा होना, 1978 में कलकत्ता में दीनदयाल के प्रति जिज्ञासा का जाग्रत होना—सभी की जड़ वही है। ये बातें उसे याद नहीं रहतीं। इसी तरह जैसे कभी उसका नाम था व्रजदुलारी और एक समय उसका बदन पूरे फूले चमेली के पेड़ जैसा नरम और गदराया हुआ था।

कोई भी ये बातें उससे नहीं पूछता। लेकिन वह अकेली दीनदयाल की शहीदी की अंदरूनी बातें कहने में समर्थ है।

कभी-कभी वह मनसा-मेला की भीड़-भाड़ छोड़ चली जाती है—कर्णावती के परित्यक्त सोते की तरफ़, श्रावण संक्रांति में। आकाश में काले बादल छाये रहते हैं। सोते के बीच में वन-शिउली के बीच कदम्ब के उन्नत प्रफुल्लित वृक्ष हैं। क्यों जाती है, यह भी वह बता नहीं सकती। घिसे हुए एक बड़े पत्थर पर वह बैठी रहती है। वहाँ उसे देखकर यह नहीं लगता, वह मनुष्य है। छोटी उमर में बाप से सुनी कहानी मन में नहीं ठहरती—"एक समय—यह स—ब हमारे थे। कर्णावती में तमाम वर्ष अगाध जल रहता था।" उसकी क्षीण काया पर कदम्ब के फूल झरते हैं। वह सोचती है, बस सोचती है। फिर वह भुइयाँ लोगों के अतीत का गौरव भूल कर सोचती है, 'कदम्ब पक जाये तो खाने में आनन्द आयेगा। भर्ता खाऊँगी। नमक मिलाकर भात के साथ खाऊँगी।'

वह नहीं जानती, उसे पहले किसी ने नहीं बताया कि दीनदयाल ठाकुर की मूर्ति छातिम गाँव में स्थापित होने वाली है।

फांसी के चौवन साल वाद अचानक प्रशासन का आकर्पण शहीद दीनदयाल ठाकुर में जगने के पीछे एक या अनेक नंगे-बुच्चे चूहों का, या 'एक नहीं काम तो खायें शाक' की मानसिकता-सम्पन्न छोकरों का, जेल किरानियों का, या समग्र अंगरेज़-विरोधी, बीसवीं सदी के आंदोलनकारी गवेपकों का योगदान रहा है। उद्देश्य, डॉक्टरेट की प्राप्ति।

एक शोधकर्ता मेदिनीपुर ज़िले में घटी सम्पूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर थीसिस लिख रहा है। उसी के साथ ही जेल-रिकार्ड भी प्रकाश में आये। उसके एक भाई ने एक जेल-किरानी का आविष्कार किया। 1920-24 का काफ़ी-कुछ रिकार्ड चूहों ने खा लिया है। उस भाई के अनुरोध पर उसने चूहे-कटे रिकार्ड का उद्धार किया और उसे लिपिबद्ध किया।

इसी तरह से उसने खोज की दीनदयाल ठाकुर की, जो छातिम गांव का वासी था। उसने एक लम्बी चिट्ठी भी ढूंढ़ निकाली। दीनदयाल की लिखी चिट्ठी, ठीक फांसी से पहले की चिट्ठी।

चिट्ठी में उसने लिखा था—देश के लिए रक्त-दान की दास्तान, नज़रुल की कविता के उद्धरण और अनेक प्रत्याशित बातें। लेकिन आश्चर्य कि चिट्ठी में आधे हिस्से के वाद देश, संत्रासवाद, गीता-वाणी—सब विलुप्त हो जाते हैं।

डेढ़ पन्ने की इन वातों के वाद वाक़ी साढ़े-छह पन्नों में जिनका नाम बार-बार उभरता है, वह है 'दुलाली'। इन पन्नों में है दुलाली के प्रति प्रेम की स्वीकारोक्ति—

"यदि जानता, यदि मुझमें साहस होता तो तुझे ले आता। तुम भी तो डर गयीं, दुलाली ! सारी बातें अस्वीकार कर दीं। आज मैं दूसरी दुनिया के पथ पर जा रहा हूँ। तुम्हें अगर साथ ले जा सकता तो ले जाता। किसने कहा कि विधवा होने पर ज़िन्दगी ख़त्म हो जाती है ? कौन कहता है कि

भुइयाँ-ठाकुर का विवाह नहीं हो सकता ? दुलाली, दुलाली ! तुम्हें एक बार देख लेता तो कोई खेद नहीं रहता। परसों फांसी है। अपील नहीं की, करूँगा भी नहीं। लेकिन उस लोक में भी तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा, जब तक हम-तुम नहीं मिलते।"

उसके बाद लिखा है, "तुमने और मैंने तो कुछ नहीं मांगा, सिर्फ़ एक-दूसरे के सिवाय। वह भी इस हृदयहीन समाज ने नहीं दिया। मैं पुकारता हूँ, दुलाली ! दुलाली ! सुन रही हो ?"

"एक दिन कर्णावती के सोते में पत्थर पर बैठकर तुमने कहा था, 'दीनू दा, चलो, दोनों जहर खा लेते हैं।' लेकिन साहस नहीं हुआ। दोनों परिवार कलंकित होंगे, यह सोच हमने यह नहीं किया। आज सोचता हूँ, क्यों नहीं किया ? यह चिट्ठी क्या वह तुम्हें देंगे ? कौन जाने ? दुलाली... सोचता हूँ, सोचता था, तुम्हें चिरकाल प्यार करता। अपनी ही बात न जानते हुए तुझे इतना कष्ट दिया। कष्ट मुझे भी हुआ।"

चिट्ठी से दो बातें पता चलती हैं। दीनदयाल ठाकुर इस दुलाली से प्रेम करते थे और ग्राम-समाज के तीव्र प्रतिरोध के शिकार हुए थे। फिर भी वह उस लड़की से प्रेम करते रहे। यह असम्भव नहीं कि प्रेम की असफलता और विद्रोह-कार्य में परस्पर सम्बन्ध हो।

शोधकर्त्ता जिज्ञासु हुआ। उसने दीनदयाल संबंधी सरकारी रिपोर्ट भी पढ़ी।

उम्र चौबीस; पाँच फुट ग्यारह इंच का क़द; रंग गोरा; बाल तांबे जैसे और छोटे कटे हुए। ब्राह्मण, गले में जनेऊ। अंगरेज़ी थोड़ी, बंगाली ज़्यादा जानता था। अल्प-भाषी। पुलिस थाना, हाजत, लाल बाज़ार—कहीं उसके बारे में कोई ऐसी-वैसी बात नहीं सुनी गयी।

1923 में दिसम्बर की एक शाम को सात बजे दीनदयाल ठाकुर, रमणी सांतरा और शरदेर पांडा ने 313 अप ट्रेन को खड़गपुर से कुछ आगे रोक दिया (ट्रेन में डाक के पैसे थे) और 'वंदे मातरम्' बोलते-बोलते गार्ड के कमरे में घुसे।

दीनदयाल बोला, "मातृभूमि के लिए रुपये ले रहे हैं। ये रुपये विदेशी सरकार ने हमारा शोषण करके लिये हैं। सो बाधा मत दो।"

इस संक्षिप्त घोषणा के फलस्वरूप--(1) डकैतों को टेररिस्ट क़रार कर दिया गया, (2) कुछ समय बीता, (3) सारे संतरियों को बंदूकें छोड़ने का मौक़ा मिला; (4) फलतः दीनदयाल की गोली से संतरी और गार्ड ज़ख़्मी हुए। लेकिन इन सब के बीच में ही गड़बड़ी हो गयी। उस गाड़ी में कलकत्ता के मर्चेंट ऑफ़िस के तीन साहेब भी थे। उड़ीसा शिकार करने जा रहे थे, सो उनके पास बंदूकें भी थीं।

उनके सीन में आने के साथ ही विद्रोहियों को पकड़वाने में सहायता मिली। बड़ी महत्वपूर्ण बात हुई। तीनों ने नख-दाँत-प्रहार से बाधा दी। दीनदयाल ने सहसा किसी के कुछ समझने के पूर्व ही रिवाल्वर की नाल सिर पर रख कर घोड़ा दबाना चाहा। एक साहब ने झपट्टा मारा और गोली से उसकी छाती बिंध गयी। ज़ख़्मी अवस्था में ही उसे खड़गपुर अस्पताल ले जाया गया। बाक़ी दोनों को मेदिनीपुर जेल में। बाद में दीनदयाल को कलकत्ता भेज दिया गया। वहाँ उसके घाव का उपचार किया गया। फिर विद्रोहियों के मुंह से स्वीकारोक्ति कराने के लिए तीनों अफ़सरों ने काफ़ी चेष्टा की, लेकिन दीनदयाल के मुख से कुछ भी नहीं निकाल पाये। बाक़ी दोनों की उम्र कम थी; उन्हें यथोचित मार-पीट कर बैनेटों से कोंच कर और बूटों से मारकर काफ़ी-कुछ उगलवाया गया।

दीनदयाल ठाकुर के बराबर का विद्रोही दल में कोई नहीं था। 1924 के अगस्त का रंगरूट। अगस्त से दिसम्बर के बीच उसने इस अंचल के दो पोस्ट-ऑफ़िसों को लूटा और ट्रेज़री-गार्ड की बंदूक छीन ली। वह अराजनीतिक ग्राम छातिम का लड़का था। इसलिए काफ़ी संक्षिप्त सोच-विचार हुआ। टेररिस्ट आंदोलन बंगाल में चल रहा है। गोपीनाथ-संहार तथा टेगार्ट व अन्य श्वेतांगों की हत्या प्रमाणित हुई। इस समय दीनदयाल की घटना को प्रचारित होने से रोका टेगार्ट ने। बोले, "एक घटना दूसरी घटनाओं को ट्रिगर करेगी। ट्राई एंड हैंग हिम एज़ ऐन ऑर्डिनरी क्रिमिनल।" 'ट्राई' करने से पहले ही 'हैंग' करने के आदेश ने काम आसान कर दिया। दीनदयाल पकड़ा गया 5 तारीख़ को और उसे तीस तारीख़ को फाँसी हुई। वह मृत्युदंड सुन कर स्थिरचित्त हुआ और संन्यासवादियों जैसी सहज भयहीनता से फाँसी चढ़ गया। फ़्यूनरल बाइ पुलिस।

दीनदयाल को फांसी होने के पश्चात जनवरी के मध्य में पुलिस छातिम में घुसी।

शोधकर्ता बड़ा प्रफुल्ल हुआ। शहीद, शहीदों को सरकार ढूंढ़ती है। यह तो शहीद ही है। उसने सरकार से भी अनुरोध किया। फलस्वरूप 1977 में एक बहत्तर साल के बूढ़े ने अपने-आपको दीनदयाल का एक-मात्र जीवित सबंधी प्रमाणित किया और पेंशन पाने लगा।

शोधकर्ता ने पुस्तक प्रकाशित की और कलकत्ता विश्वविद्यालय के कॉन्वोकेशन में, शादी में सब्जी-पूड़ी वितरित करने के अंदाज़ में, उसे भी डी० फ़िल० प्रदान की गयी। उसकी पुस्तक की बिक्री नहीं हुई और वह खुद ही अपनी पुस्तक वितरित करता रहता है। अपने पैसों से पुस्तक छापी। कोई असुविधा नहीं हुई। उसकी किताब मंत्री के दफ़्तर में भी पहुंचा और मंत्री के पी० ए० साहब पढ़कर एलेक्ट्रिफ़ाइड हो गये। शहीद, जेनुइन शहीद, विद्रोह की मातृभूमि मेदिनीपुर का शहीद, उसे आज तक सम्मान नहीं मिला। उसने मंत्री को समझाया कि दीनदयाल की मूर्ति की स्थापना होनी चाहिए। जैसे मृत व्यक्ति की मूर्ति अन्य जीवंत समस्याओं से ज्यादा महत्वपूर्ण है, उसी अंदाज़ में मूर्ति की स्थापना का निर्णय एक मत से लिया गया।

इसी स्टेज पर मदन खां प्रविष्ट हुआ। उसके बड़े भाई 1924 की 9 तारीख को 313 अप पैसेंजर में थे। पकड़े जाने के बाद बदन खां ने दीनदयाल की शिनाख़्त की और बाद में कलकत्ता जाकर पुलिस की सहा-यता की। इसी से उसका मान बढ़ा और इसी कारण उसका पुत्र मदन खां स्वाधीनता के बाद देश-प्रेमी क़रार दिया गया। सदन खां को भी किसी प्रकार ऐसी ख़बर मिल गयी थी। वह मूर्ति-स्थापना में काफ़ी उत्साह दिखा रहा था।

यह लेकर थोड़ी गड़बड़ी मची कि मूर्ति किस चीज़ की गढ़ी जाये ? पत्थर की नहीं। क्यों ? पत्थर की मूर्ति होने से ही वीरसिंह के सिंह-शिशु अपने सिरों की रक्षा नहीं कर पाये।

"पत्थर नहीं तो क्या मिट्टी की बने ?"

सदन बोला, "मिट्टी की मूर्ति अगर ढँकी नहीं गयी तो गल जायेगी।

ढंकने पर उसमें दीमक लग जायेगी।"

"तो ब्रोंज़ ?"

किसी ने मज़ाक किया, "हाँ, ब्रोंज़ ठीक है। तोड़-तोड़ के बेचेंगे तो रुपये मिलेंगे।"

इस बात से सदन ख़ाँ को बड़ा दुख हुआ। "हैं! यह क्या कहा आपने? देश का सपूत! उसकी मूर्ति तोड़कर कौन बेचेगा? यह हमारे इलाक़े का आदमी कहता है या कोई शैतान?"

इसलिए ब्रोंज़ की मूर्ति की स्थापना की बात बनी। सदन की चेष्टा से पाटक के सुराज मोहिनी ब्वायज़ स्कूल की 1918 में प्रकाशित स्कूल-मैगज़ीन मिली। उसमें स्कूल से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण दीनदयाल ठाकुर की फ़ोटो भी मिली। वही फ़ोटो मूर्तिकार को दिखायी गयी और निर्देश दिया गया, "यहाँ तो उम्र अठारह है, लेकिन मूर्ति में छह वर्ष बढ़ा दीजियेगा।" इस बात को सुनकर मूर्तिकार का सिर घूम गया। पर कुछ बोला नहीं, क्योंकि कॉन्ट्रेक्ट छुटने पर उसी को घाटा होता। वह 'येस सर' कहकर चला गया।

सदन ख़ाँ लौटकर शहर आया और नवीन को पकड़कर सुसंवाद दिया। बोला, "किताब में दूली बुआ की लिखी चिट्ठी भी छाप दी है। सुना! समाचारपत्र के लोग पूछेंगे ज़रूर।"

"क्या पूछेंगे?"

"सोच के देखो। बाप-माँ के रहते दीनू ठाकुर ने तुम्हारी बुआ को चिट्ठी क्यों लिखी?"

नवीन ने गाँव में आकर अपने बाप को यह ख़बर सुनायी। बाप भ्र माया। नवीन भी क्षुब्ध हुआ।

"क्रोधित क्यों हुए?"

"नहीं तो क्या नाचूं।"

"तो क्रुद्ध क्यों हुए?"

"घर के साथ तो तुम्हारा बस खाने का रिश्ता है। घर की बात बाहर फैलेगी तो मैं नहीं परेशान होऊँगा?"

"बाबा, दिन अब वैसे नहीं हैं।"

"गाँव का बाप, वैसा ही है।"

"नहीं, नहीं, कोई गोलमाल नहीं होगा।"

"नहीं होगा ?"

सदानंद जब शहर गया तो सदन खाँ बोला, "तुम भी तो रहोगे! ख़बर लेंगे रिपोर्टर। उन्हें बता देना, किसे चिट्ठी लिखी गयी—मुझे पता नहीं। दूली बुआ को अलग हटा दो। वे किसी के सामने न जायें। सारी बातें दब जायेंगी।"

"घर में विभीषण भी तो है, नवीन चंदर ?"

"उसे समझा दूँगा।"

नवीन सचमुच क्षुब्ध हुआ। बोला, "कुछ नहीं दबाऊँगा। तब कलंकिनी थी, अब यह बात कोई मानेगा भी नहीं। आप शहर में बैठकर हुकुम चलाइये, उससे तो कुछ नहीं होगा। मैं उनके साथ-साथ चलूँगा। एक पक्की सड़क नहीं है, सातों गाँव अंधकार में पड़े हैं। कुछ लोग साथ नहीं देंगे तो क्या होगा ? समाचारपत्रों में लिखने से ही आजकल काम होता है।"

जिसे लेकर इतनी बातें हुईं, वह उस समय कणवती के सूखे स्रोत में पके आँवले ढूँढ़ रही थी। लकड़ी का बंडल लताओं से बाँधकर खींच रही थी। नवीन साइकिल पर ढूँढ़ता-ढूँढ़ता वहाँ पहुँचा।

पुकारा, "बुआ!"

"कौन, नवीन ?"

"जंगल में क्या कर रही हो ?"

"पके आँवले हैं रे, खायेगा ?"

"तुम ज़रा यहाँ आओ।"

लकड़ी का बोझा खींचते हुए बुआ आयी।

नवीन बोला, "यहाँ बैठो।"

"क्यों ?"

"बात है।"

"हमारे साथ ?"

"तुम्हारे साथ न करके किसके साथ करूँ ? वे क्या मनुष्य हैं ?"

"क्यूँ रे, बाप बिगड़ता है ?"

"जाने दो उनकी बातें। तुम बैठो।"

बुआ को हाथ पकड़कर बैठाया नवीन ने। बोला, "इतनी चेष्टा करता हूँ तो क्या काम नहीं मिलेगा, बुआ ? अगर मिल गया तो ठीक, नहीं तो तुम्हारे भाई के मुँह पर चपत लगा कर तुम्हें साथ लेकर यहाँ से चला जाऊँगा।"

"तेरी तो बस यही एक बात है।"

"तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ, बोलो तो ?"

"सिर का तेल ?"

"अरे, वही तो भूल हो गयी।"

"तो जाने दे।"

नवीन ने उसके बदन पर एक चादर उढ़ा दी। शहर के बाज़ार से सात रुपये में ख़रीदी है। झिलमिल चादर है, धागे नहीं के बराबर। लेकिन बुआ का देने के लिए नवीन के पास है भी तो कुछ नहीं। बुआ को जैसे स्वर्ग मिल गया।

"हाँ नवीन, मेरे लिए है क्या ? ओ माँ ! कैसा रंग, कैसा रूप, कैसी नयी-नयी गंध ! देख।"

"देखा ! ये ले।"

"किसकी डिबिया है रे ?"

"वात का मलहम है। बस में बेच रहा था। रोज़ ही तुम घुटने और कमर के दर्द से रोती रहती हो।"

"रुपये कहाँ से मिले ? बाप ने दिये ?"

"धत् ! शहर क्या यूँ ही जाता हूँ ? पाटक के मुरारी बाबू का प्रेस है न ? वहीं काम सीख रहा हूँ।"

"बाप कुछ नहीं देता ?"

"नहीं।"

बुआ धीरे से बोली, "इतनी संपत्ति है। 'सदा' का जितना हिस्सा है, उसमें तुम्हारा भी उतना ही है। तुम्हारे भाई का भी उतना ही।"

"नहीं बुआ, मैं कुछ नहीं चाहता।"

बुआ का हाथ अपने हाथ में लेकर वह कुछ देर बैठा सोचता रहा। सरदियों के दिन हैं, तीन बजे हैं। नदी में बालू उड़ रही है। दूर कहीं भैंस के गले में बँधी घंटियाँ बज रही हैं। दासू सोरेन सोते में रबी उगाते हैं। चारों तरफ़ उड़ती लैटेराइट, वामनशाल के वन में पत्ते झड़ने का शब्द। उदास-उदास। मन ख़राब कर देने को काफ़ी। नवीन इन विक्षुब्ध उदासी को पक्की सड़क से बाँध कर वर्तमान में ले जाना चाहता है।

बुआ के सफ़ेद बाल, मुख पर कोमल और करुण भाव, झुर्रीदार चेहरा सिर्फ़ चमड़े की रेखा-भर। दीनदयाल की चिट्ठी में बुआ की पतली कमर टेढ़ी करके खड़े होने की बात लिखी है। नवीन शहर में पढ़ आया है। अब अगर यह बात बुआ से कहे तो वह निष्ठुरता होगी, पर कहनी तो है। लेकिन नवीन जिस समय को छातिम में लाना चाहता है वह भी निर्मम और क्षमाहीन है। रिपोर्टर तो बुआ को छोड़ेंगे नहीं।

"बुआ, एक बात है।"

"बोल।"

"दीनू ठाकुर तुम्हें याद आते हैं ?"

बुआ निरुत्तर। असहाय-सी, टकटकी बाँधे नवीन को देखती रही। नवीन ने आज पहली बार लक्ष्य किया कि बुआ की आँखें अठहत्तर वर्ष की उम्र में भी सजीव हैं।

"याद आते हैं, बुआ ?"

"हाँ।"

"दीनू ठाकुर का नाम किताब में आया है, बुआ !"

"कहाँ ?"

"मेरे पास नहीं है।"

"तब ?"

"तुम्हारा नाम भी।"

"मेरा नाम ?"

"दीनू ठाकुर ने फाँसी चढ़ने से पहले तुम्हें चिट्ठी लिखी थी। वह चिट्ठी किताब में छपी है।"

"तो क्या होगा, नवीन ?"

"किसका क्या होगा ?"

"तेरा बाप मुझे भगा देगा तो कहाँ जाऊँगी ?"

"कोई भगायेगा नहीं। सुनो !"

"बोल।"

"दीनू ठाकुर की मूर्ति लगेगी गाँव में।"

"कहाँ ?"

"उनके घर को साफ़ करके, वहीं।"

"कब ?"

"सुन रहा हूँ, तीन महीने के अंदर-अंदर। तब लोग आयेंगे। तुमसे भी कुछ पूछ सकते हैं।"

"मैं क्या कहूँगी ?"

"जो मन में आये बोल देना।"

"तेरा बाप...!"

"मेरा भी हक़ है बुआ, तुम्हीं ने तो कहा है। तुमसे कौन कहेगा ? अगर किसी ने कुछ कहा तो शहर चले जायेंगे—मैं और तुम। देखेंगे, कैसे रहते हैं !"

"नवीन...!"

"बोलो।"

"तब तुम्हारे ताऊ मुझसे छोटे...मर चुके हैं अब...उन्होंने मुझे खूब पीटा था। उसके बाद इतनी लांछना...सब तो भूल गये थे। अब फिर से...।"

"बुआ, तब क्या हुआ था, मन में मत रखो।"

"कितने साल हुए ?"

"चौवन।"

"चौवन ? इतने दिन हो गये !"

"हाँ, बुआ !"

"तेरा बाप तो कुछ जानता ही न था। इत्ता छोटा बच्चा था। वो भी बड़ा होकर...तेरी माँ...एक कोने में पड़ी हूँ। गाय-बकरी से भी अबला होकर।"

"जानता हूँ।"

"आज, इतने दिन बाद...।"

"इस बारे में मत सोचो। कोई कुछ नहीं बोलेगा। मैं पंचायत में हूँ। मेरी बात का कुछ तो मोल है गाँव में! कोई कुछ नहीं बोलेगा। घर चलो।"

"चलो।"

"अरे, यह तो भूल गया। यह लो!"

"क्या है रे?"

"सत्तू और भेली-गुड़।"

"जीते रहो। राजा बनो।"

"राजा और रानी! तुम्हें हाथ से भात भी नहीं देते। तिस पर भी राजा होने को कहती हो?"

"नहीं, राजा हो तो पहले।"

"बुआ, ठाकुर-बाड़ी में पुलिस घुसी थी?"

"हाँ, और...।"

"क्या?"

"ठाकुर-जेठ मेरे ऊपर क्रोधित होकर...।"

"छोड़ो, रोओ नहीं।"

"अपने बाप से कहना, नवीन, कि अब और लांछित न करें। नहीं तो मैं इसी नदी के सोते पर जंगल के बीच घर बना कर रहूँगी।"

"बस एक ही बात। अब छोड़ो भी।"

वह तो यही सोचती थी कि उसे कुछ याद नहीं। लेकिन रात को घर के अंदर मचान पर लेटे-लेटे उसे सारी घटनाएँ याद आने लगीं। क्यों? कैसे? याद रहने की तो कोई बात नहीं। उसी एक घटना के कारण तो आज के तमाम कष्ट हैं। इसीलिए वह शायद कुछ नहीं भूली। कितने दिन, कितने साल! सब दब गये थे, पता नहीं कहाँ? नवीन जैसे उत्तरी हवा

की तरह आया और ढेरों सूखे पत्ते उड़ा ले गया।

कब की, कब की बात है ?

दोनों का जन्म इस शती के साथ ही हुआ था। दोनों हमउम्र। बीसवीं शती के हमउम्र। लेकिन इस बीसवीं शती ने उन्हें मित्र नहीं बनाया। उन्हें मध्य युग में धकेलकर खुद आगे बढ़ गया था।

हठात जैसे उसे सब-कुछ याद हो आया। वह जिनकी बात सोच रही है—उनका उस समय का मन, उन दिनों का प्रेम। आज की रात शायद उन्हीं यादों में खो जाना, वैसा ही हो जाना शायद संभव नहीं। अठहत्तर बरस हो गये। आज यूं लगता है, जैसे अतीत के उस असफल प्रेम के बजाय पेट की भूख अधिक वास्तविक है। उन दिनों की ब्रजदुलारी बनकर अतीत में लौट जाना शायद संभव नहीं। हाँ, यह ज़रूर संभव है कि आज के लड़के-लड़कियाँ अतीत की ब्रजदुलारी और दीनदयाल की याद ताज़ा करें।

ये सारी बातें उसके मन में उठीं, इसका कारण है नवीन। नवीन उसके साथ बातें करता है और वह नवीन के सहारे वर्तमान को देखती है। दूसरा कारण भी है, इस परिवार में उसकी अद्भुत स्थिति। सारा दिन वह जंगल में घूमती है दासू सोरेन के साथ, बाउरी लोगों के साथ। रतन नाई से भी मिलती है कभी-कभी। बातें भी होती हैं। वह जानती है कि उससे बात करके ये लोग नवीन के बाप, उसके भाई को कुछ नहीं बतायेंगे। वह ज्यादातर भुइयाँ लोगों को शत्रु मानती है, केवल नवीन को मित्र। वह खुद भी यही समझती है कि नवीन वही चाहता है, जो वह चाहती है। वही ये भी चाहते हैं—पक्का रास्ता, स्वास्थ्य-केन्द्र, पक्की हाट। ठीक है, इनसे उनका भी भला होगा। उनकी भलाई के साथ उसके भले होने की भी कोई बात जुड़ी हो, यह वह नहीं जानती। वस्तुतः वह खुद को मृत ही मानती है। इस उम्र में भी निरंतर अन्न-चिन्ता में ग्रस्त है वह। आज सत्तू, कल मूढ़ी। इसके अलावा कुछ भी अच्छा नहीं लगता। दासू सोरेन उससे अकसर उलटी-पुलटी बात कहता है। कहता है, "तू बाज़ारू लड़की हो गयी, इससे तो तेरी यह दशा है। भात जुटता नहीं, भीख भी नहीं माँग सकती। बहुत कष्ट है।" राज-घराने की लड़की होने के कारण ही उसका सर्वनाश हुआ, दासू सोरेन हमेशा यही कहता है।

उस समय दासू का बाप कानू सोरेन भुइयाँ की जमीन पर बटाई पर खेती करता था। ब्रज दुलाली की बात, उसकी शादी की बात वह चेष्टा करके भी याद नहीं कर पाया। वृथा चेष्टा। चार वर्ष में पाटक के भुइयाँ के घर शादी। छह वर्ष में विधवा। जहाँ तक की याद आती है, वहीं दुलाली के कपड़ों की बात भी जुड़ जाती है। गले की चूड़ी, झिलमिल कपड़े, चाँदी के गहने, पैरों की पायल—ब्रज दुलाली ने कभी नहीं पहने। भुइयाँ की चलती थी। वे ब्राह्मण ठाकुरों के समकक्ष थे। गाँव में सम्मान था।

दीनू को दुलाली ने कभी 'दादा' नहीं कहा। कहने की बात नहीं है। दस वर्ष की उम्र से ही दुलाली दीनू की माँ के पास जाती रही थी। विधवा लड़की, उस पर खूबसूरत। लड़की की माँ दुलाली से हर साल नाना व्रत कराती थी। हरेक व्रत के बाद आशीष माँगी जाती—

हमारा सुहाग अखंड हो।
स्वामी-पुत्र का संसार अचल हो।
हम सिंदूर के साथ ही मरें।

इसके बदले में दुलाली कहती—

पिता का संसार बढ़ता रहे,
भाई का संसार अचल रहे,
मेरे सिर में जितने केश हों,
उनकी उम्र इतनी रहे।

दोनों एक-दूसरे से मिलते थे। प्रत्येक दिन। दुलाली राज-घराने की लड़की। राजा-रानी अब गृहस्थ हो गये हैं तो क्या, गाँव के लोग सम्मान देते थे। गाँव की लड़की थी। दुलाली सर्वत्र घूमती-फिरती थी। दीनू से सुनी तमाम व्रत-पूजा की सब कथाएँ कंठस्थ हो गयी थीं। दीनू की माँ जब काम में व्यस्त रहती तो वह दुलाली से कहती थी, "दीनू की बहन के कुछ कपड़े गंदे हो गये हैं। बड़े भाई और दूसरे भाइयों के कपड़े रफू करने हैं। दीनू की किताबों पर जिल्द चढ़ानी है।" तब स्याही बनानी भी नहीं आती थी किसी को। ठाकुर-जेठ कहते थे, "दुलाली जैसी स्याही कोई भी नहीं बना सकता।" जेठा-जेठी दोनों ही कहते थे, "हाथ-पैर से तो लक्ष्मी है। रूप-गुण से सम्पन्न इस लड़की का जन्म उस घर में क्यों हुआ? क्यों,

इसके भाग्य फूट गये ! कौन जाने ?"

जेठा बोलते जाते थे, दुलाली सुनती थी। उन्होंने क्या यह नहीं कहा था कि अगर अब शादी की तो लड़की दो मास के बाद ही विधवा हो जायेगी ? दुलाली, कैसी शर्म की बात है ! बारह बरस की उम्र होने पर वह अपनी सहेली कुसुम के घर गयी थी, शादी में। कुसुम की बुआ ने उसे 'दुर-दुर' कहकर घर से निकाल दिया। कुसुम की माँ भुइयाँ लोगों के डर से काँपती हुई बोली, "तुम्हें शादी देखनी नहीं चाहिए। किसी भी काम में तुम्हारी ज़रूरत नहीं। जब यह डोली में बैठकर जाये तो दूर से देख लेना।"

दुलाली उस दिन घर लौटी थी और रोते हुए गुस्से में माँ से बोली थी, "क्यों मेरी शादी की थी तब ? बाद में होती तो विधवा नहीं होती। कुमी की शादी तक नहीं देख पायी।"

उसके चार वर्ष बाद ही एक और शादी हुई। कुसुम की बहन मालती की। घर के सभी शामिल थे, सिर्फ़ दुलाली घर के पिछवाड़े खड़ी थी और एक डाली के सहारे उचक-उचक कर शादी का गाना-बजाना सुन रही थी। जाने कब दीनू क़रीब आकर खड़ा हो गया था, उसे पता नहीं चला। दीनू की आवाज़ सुनकर पहले चौंकी थी, डर भी लगा था।

"क्या सुन रही हो ?"

"अरे, तुम ?"

"क्या सुन रही हो ?"

"शादी का बाजा। तुम गये थे ?"

"नहीं।"

"क्यों ? दूल्हे को देखने का मन नहीं करता ? दूल्हे को तो काका के घर में ही ठहराया गया है, क्यों ?"

"नहीं जानता।"

"क्यों, क्या कोई काम है ?"

"तुझे ही देखने आया था।"

"मुझे, अचानक !"

"अचानक क्यों ? तुझे तो रोज़ ही देखता हूँ।"

"सो तो है, लेकिन...।"

उसके बाद जो हुआ, अप्रत्याशित था। दीनू ने उसके मुँह पर उंगली रखी, फिर पास खींचकर बोला, "तू तो देखने में सरस्वती लगती है !"

"यह क्या ?"

"वाह, तुझे प्यार करता हूँ तो छू कर देख नहीं सकता क्या ?"

दुलाली भयभीत हो उठी। चेहरा गर्म हो उठा। शरीर काँप गया। फिर बोली, "पाठक के स्कूल में पढ़ते हो, यही सीखते हो ?"

"यह क्या स्कूल में सिखाते हैं ?"

"तुम जाओ। तुम जाओ यहाँ से अब।"

दुलाली खुद को छुड़ाकर चली गयी थी। घर में घुस कर दरवाज़ा बन्द कर लिया था उसने। बिस्तर पर लेट कर, तकिए में मुँह छुपा करऔर काफ़ी देर तक काँपते रहने के बाद ही वह शांत हुई थी। फिर उठ कर उसने आईने में अपना चेहरा देखा था। गोरा रंग, सुंदर मुख। यह तो वह जानती है। माँ कहती है, "आईना मत देख, बेटी!' दुलाली इसीलिए आईना नहीं देखती, चोटी नहीं बनाती। जूड़ा बनाती है हाथों से। एकादशी का उपवास नहीं करती। सत्तू-फल-दूध खाती है। रात को रोज़ लावा, दूध और केले खाती है।

'तुझे प्यार करता हूँ।' कितनी भयानक बात है, कितनी भयंकर ! इस 'प्यार' से तो बचपन से डरती रही है दुलाली।

बाउरीपाड़ा की चरन बाउरी की बहू अपने देवर से प्रेम करती है। खूब मार-पिटाई हुई थी बाउरीपाड़ा में। पंचायत ने कहा था, गाँव में इस तरह की गड़बड़ नहीं चल सकती। देवाश्रयी गाँव। ब्राह्मणों का गाँव है। चरन अपने ममेरे भाई को निकाल दे। घर में पोसा ही क्यों था—अनाथ, निराश्रय समझ कर ?

चरन की बहू उनके घर आयी थी धान लेने। बहुत दुखी थी। चेहरे पर, आँखों में केवल 'सर्वनाश' लिखा था। उसे घर के सभी लोगों ने कौतूहल से देखा था, दुलाली ने भी। चरन की बहू सभी को बड़ी तेज़ नज़रों से घूरती थी। फिर धान लेकर चली गयी। घर गयी, धान पकाया, दालान साफ़ किया। उसके बाद नहाने चली गयी नदी की धार में। सावन का महीना था। नदी में जल था। फिर लौटी नहीं। कलक-फूल के बीज

खाकर वह और उसका देवर एक साथ मरे थे। घने वन में। गाँव में खूब बातें हुई थीं। दुलाली के मन में डर बैठ गया। प्यार क्या ऐसा होता है? प्यार का मतलब क्या सामाजिक अशान्ति या मृत्यु है?

'प्यार' में डर है। दुलाली का अपना भाई बहू से प्यार करता था, यह जानकर जेठी ने वहू के ऊपर अत्याचार किया था। दुलाली का बाबा कहता था, "इस प्रेम, प्यार-व्यार में रखा ही क्या है? संसार में आये हो काम करने, काम करो। शादी करना, बच्चे पैदा करना ही काम है। प्रेम से किसी का मंगल नहीं होता।" वह बहू भी बाद में पागल हो गयी। उसे बाप के घर भेज, जेठी ने भाई की शादी फिर से कर दी थी।

दीनू उसे प्यार करता है। कैसे? उसे हमेशा से देखती आ रही है। क्या प्यार ऐसा होता है? प्यार शादी के बाद होता है। नयी जान-पहचान पर होता है। दुलाली काफ़ी सोचकर भी दीनू की बात का मतलब नहीं समझ पायी। प्यार से ही हमेशा देखा है, बहन की तरह। वह तो विधवा है, शादी के उत्सव नहीं देख सकती। यह सोचकर ही शायद वह आया था दुखी होकर।

सावन का महीना आया। दुलाली थान में प्रतिदिन दूध चढ़ाने आती थी।

उस दिन भी वह दूध चढ़ाकर प्रणाम करके जल्दी-जल्दी लौट रही थी। रास्ते में बरसात शुरू हो गयी। वह भीग गयी और काँपने लगी। दौड़कर एक पेड़ के नीचे खड़ी हो गयी। तभी दीनू दिखायी पड़ा। छाता लेकर घर जा रहा था।

"दीनू, एक मिनट रुकना।"

"दुलाली, तुम?"

"थान पर आयी थी।"

"आ जाओ, छाते के नीचे।"

"थोड़ी देर रुकते हैं। पानी बहुत तेज़ है।"

"ठीक है।"

छाते के नीचे दोनों। आकाश में काले मेघ। जैसे शाम को ही रात उतर आयी थी। दुलाली अस्थिर हो उठी थी।

हठात दीनू बोला, "दुलाली !"

"क्या ?"

"तुमने यह क्या कर दिया ! तुम्हें छोड़कर कोई और बात दिमाग़ में आती ही नहीं।"

"मत बोलो, चुप रहो।"

"तू क्यों महानंद भुइयाँ की लड़की हुई, क्यों विधवा हुई ?"

डर से काँपती हुई दुलाली ने कहा था, "तुम क्या पुरोहित के लड़के नहीं हो ? तुम क्या ब्राह्मण नहीं ? ऐसी बातें क्यों कहते हो ?"

उस दिन दुलाली भागकर वहाँ से चली गयी। लेकिन वह अपने मन को समझा नहीं पा रही थी। माँ के आगे रोती हुई बोली, "थान पर जाती हूँ। एक हाथ में दूध, दूसरे में केले। छाता लेकर साथ में किसी को नहीं भेज सकती ?"

उसे काफ़ी परेशानी थी। ठाकुर-बाड़ी में वह दिन में दो-चार बार ज़रूर जाती थी—फल लेकर, दूध लेकर, जेठी माँ के हाथ की तरकारी लेकर। अब वह कैसे कहे कि वह वहाँ नहीं जायेगी ? कहने पर लोग संदेह करेंगे। कैसी-कैसी बातें निकलेंगी ! वह ज़्यादा सात-पाँच नहीं सोचती। सबेरे उसे ज्वर चढ़ आया।

काफ़ी तेज़ ज्वर। इसे न्यूमोनिया कहते हैं। पाटक से दीनू ही डॉक्टर लाया। माँ छाती पर पुलटिस देती और रोती रही। बाप ने कहा, "उठ बेटी ! तू मेरे घर का उजाला है। तेरा चेहरा देख कर ही तो मैं सब-कुछ भूल जाता हूँ।"

ज्वर उतर जाने के बाद भी शरीर में बल नहीं रहा काफ़ी दिनों तक। फिर एक बार भाद्र संक्रांति पर छोटे भाई सदानंद को गोद में लेकर वह गयी थी पोखर पर। दीनू आकर खड़ा हो गया। कोई बात नहीं की। दुलाली भी नहीं बोली। छाती धड़कने लगी थी। धान-कुन्नी चुनकर वह किसी तरह लौट आयी।

शाम को दीनू फिर हाज़िर। दालान में आकर बैठा और कहने लगा, "चाची, अपनी लड़की का व्यवहार देखा ! उसे बीमारी हुई, पाटक से

लाया। बीमारी ठीक हुई, सो एक बार भी यह पूछने नहीं आयी। माँ ने यह जल भिजवाया है। तुलसी में जल दे देना।"

दुलाली, माँ के आवाज़ लगाने पर सामने आकर खड़ी हो गयी। माँ के कहने पर उसने प्रणाम भी किया।

दीनू बोला, "अब चलिए। माँ आपके लिए प्रसाद लेकर बैठी है।"

"जा, दुलाली! छिः छिः! ठाकुर-दीदी तेरे लिए बैठी हैं, जा जल्दी।"

दुलाली घर से निकली। दीनू कहने लगा, "क्यों? कैसे निकाल लाया?"

"तुमने निकाला है?"

"मैं क्या रोज़ भगवान को याद नहीं करता?"

"दीनू!"

"क्या?"

"ऐसी बातें मत करो।"

"क्यों?

"मुझे तकलीफ़ होती है।"

"मुझे भी तो होती है।"

"मैं ऐसी बातें सुन कर क्या करूँगी? तुम स्वयं भी शांत रहो। मैं छोटी हूँ, फिर विधवा भी हूँ। तुमने लिखाई-पढ़ाई की है, घर के बड़े लड़के हो, तुम्हारी शादी होगी।"

"देखा जायेगा।"

"जेठा बाबू का संबल तुम्ही हो।"

"देखा जायेगा।"

"बोलो, शांत रहोगे न?"

"शांत रहूँ तो क्या तुम खुश होगी?"

"हाँ, शांति होगी।"

"शांति होगी दुलाली, शांति? ठीक है। तब मैं खू—ब शांत रहूँगा! तुझे और नहीं जलाऊँगा। दुलाली, एक बार खड़ी हो जा। भर-नज़र देख लूँ। दुली, दुलाई, दुलाली, तुझे कितना प्यार करता हूँ, किसी दिन कह नहीं

पाया।"

भागते हुए, तक़रीबन भागते हुए दीनू चला गया था। वहां से, गांव से। बाप से कहा, "मैं आपके जैसा पुरोहित नहीं बनूंगा।। पढ़ाई करूंगा। गांव आने-जाने में तकलीफ़ होती है। पाटक में रहूंगा। दीदी के ससुर के घर।"

फिर बहुत-बहुत दिनों तक दीनू नहीं लौटा। दुलाली को शांति, अपार दुख देकर वह चला गया। आठ महीने के बाद लौटा। मनसा के मेले वाले दिन। उस दिन छातिम में सैकड़ों लोग थे। सबेरे से ही लोग भैंसा गाड़ी में चले जा रहे थे। दुलाली भी गयी थी मेले में। दीनू उसे बुलाकर कर्णावती के सोते की तरफ़ ले गया। बोला, "यह मुझे क्या हो गया है, दुलाली ? तुझे भूल नहीं सकता, किसी भी तरह नहीं। जाने क्या हो गया है मुझे ?"

"मैं भी तो नहीं भूली हूँ।" दुलाली बोली थी।

1917 में सतरह बरस की दुलाली और दीनू, दोनों ही जवान थे। इस बात के कहने का क्या अंजाम होगा, यह जानते हुए भी दुलाली ने कहा था, "मैं भी तो नहीं भूली हूँ।"

तब समय बड़ा अमोघ था। सच बोलने के दिन थे। शाम हुई, आकाश काला हो गया। दूर मनसा-थान पर बाजा-गाजा चल रहा था। रात को 'मनसा-मंगल' का गान होगा। सामने सूखी नदी की तलहटी में ढलाव पर से पानी उतर गया है। हवा में कदम्ब की खुशबू। आकाश-अंचल में मंथर मेघ न जाने किसकी प्रतीक्षा में थे। हवा भी विद्युत-सी चमत्कृत थी।

"भूली नहीं हो तो मेरे क़रीब आ जाओ।"

दुलाली दीनू के क़रीब खिसक गयी थी। उसके बाद मुख उठाकर बोली थी, "अब मेरी बात सुन, दीनू !"

खूब गम्भीर होकर, दुलाली ने धीरे-धीरे कहा, "मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, पर इससे कुछ फ़ायदा है ?"

"हानि क्या है ?"

"क्या होगा, दीनू ? लोक-समाज से तुम भी कुछ नहीं कह पाओगे

और मैं भी कुछ नहीं।"

"नहीं।"

"सिर्फ़ दुख होगा!"

"हाँ।"

"तब लाभ क्या है?"

"नहीं जानता।"

'दीनू!"

"बोलो?"

"दोनों मर तो सकते हैं।"

"छिः!"

"तब बोलो, मुझे तुम भूल जाओगे?"

"भूल तो नहीं सकता।"

"मैं अब क्या कहूँ, बोलो?"

"कुछ तो कहना बाक़ी नहीं है रे!"

दोनों काफ़ी देर चुप खड़े रहे। फिर दीनू बोला, "देखते हैं। छातिम ही दुनिया नहीं है। तुम जाओ। एक साथ नहीं देखे जायें। देखने पर लोग बातें बनायेंगे।"

फिर दीनू पाटक चला गया। अगले साल उसने मैट्रिक की परीक्षा दी। रिज़ल्ट निकलने से पहले ही खड़गपुर चला गया। दीनू के बाप भी जानते थे कि वह खड़गपुर में है। लेकिन पाटक के मास्टर के साथ वह कलकत्ता चला गया था। यह मास्टर दीनू को काफ़ी प्रभावित करता था। फिर जब रिज़ल्ट निकलने के बाद दीनू लौटा तो वह एक दूसरा ही दीनू था। कम बात करता, रुक्ष और गम्भीर। तब वह माँझीपाड़ा या बाउरी-पाड़ा में घूमता रहता था। हैज़े का मौसम था। हैज़ा ख़तम होने के बाद खड़गपुर से हेल्थ-इंस्पेक्टर आये। उन्होंने दीनू की खूब प्रशंसा की। लौटते समय आंचलिक थाने में बोल गये, "ग्राम-सेवा से शुरू होता है और टेर्ररिज़्म पर ख़तम—यह देखा है मैंने।" दरोगा ने इन बातों को कोई महत्व नहीं दिया। बोले, "विष-झाड़ में विष-वृक्ष होते हैं। ब्राह्मण, पुरोहित और देवभक्त-- क्या उनका लड़का ख़राब हो सकता है?"

दीनू ने दुलाली से मिलने की कोई चेष्टा नहीं की। खुद को निरन्तर व्यस्त न रखने पर शांति नहीं मिलती। वह तब मलेरिया-निवारण में लग गया। दुलाली भी अपने-आपको काफ़ी सिकोड़कर रखती थी। व्रत वगैरह के लिए अब नहीं जाती वह। सांसारिक काम में ही लगी रहती। लेकिन पूस के महीने में होने वाली पूजा के समय जब सब मंडप में थे तो वह दुलाली को लेकर अपने बागान में आया। बोला, "दुलाली, मैं अब सभी कुछ जान आया हूँ।"

"क्या ?"

"मैं तुझसे शादी करूंगा।"

"मुझ से ! शादी ! !"

"तुझसे शादी करूंगा।"

"तुम्हें पाप का भी डर नहीं ?"

"कैसा पाप ? विधवा की शादी होती है, क़ानून है। कैसा डर ? दोनों कलकत्ता चले जायेंगे। वहाँ लाखों आदमी हैं। विराट शहर ! कौन ढूंढ़ पायेगा हमें ? तुझसे कहता हूं दुलाली, मुझसे शादी कर ले। मुझे पकड़ कर रख, नहीं तो मैं मर जाऊंगा।"

"तब मैं भी मरूंगी।"

"मरूंगी...मरूंगी...ज़िंदा रहूंगी---नहीं कह सकती क्या ?"

"कैसे कहूं ? तुम्हारे साथ जाऊंगी तो कलंकिनी होऊंगी। बाबा भी पतित हो जायेंगे।"

"प्रायश्चित करके वह फिर जाति में आ जायेंगे।"

"मैं भूल नहीं पाऊंगी, ग्लानि में मरूंगी।"

"तू नहीं चल पायेगी ?"

"नहीं।"

"तू मुझे प्यार करती है ?"

"हाँ।"

"तब भी...?"

"मुझ में इतना साहस नहीं है।"

"तुझे मैं क्या कहूँ, बोल ?"

"कुछ भी कहने को नहीं है। पहले तो जाति बेमेल, उस पर मैं विधवा। गाँव में सभी...बड़ा वंश...कलंक...।"

"तब जाओ।"

"जाऊँ ?"

"जाओ और कभी मेरे सामने मत आना, कभी नहीं।"

दुलाली उस दिन मरने चली थी। दुलाली को समझ नहीं आ रहा था कि दीनू किस प्रबल आकर्षण में बँध गया है ! वह अपने-आपको स्थिर रखने में असमर्थ था।

दीनू चला गया पाटक में स्कूल-मास्टर होकर। कह गया, "गाँव में भुइयाँ लोगों की पुरोहितगिरी नहीं करूँगा। आप जो भी समझें, समझ लें।"

ठाकुर-जेठा को गहरा आघात लगा। कुल-कर्म नहीं करूँगा, यह कहना क्या उचित है ?

"शादी करके जाओ।"

"शादी भी नहीं करूँगा।"

1919 का वर्ष। 19 साल का कोई लड़का, गाँव का लड़का, बाप के सामने इस तरह नहीं बोल सकता था। माँ बोली, "बाप के मन को कष्ट दिया तूने ?"

"उनके और लड़के भी तो हैं।"

"तू इस तरह क्यों जा रहा है ?"

"नहीं बता सकता।"

दीनू चला गया। नियति ने उन्हें शांति से नहीं रहने दिया। उनकी नियति पीड़न में ही थी। पाटक में दीनू बीमार हुआ। उसे गाँव लाना संभव न था। माँ चली गयी सेवा करने। काफ़ी दिन बाद भैंसा-गाड़ी में बैठ कर वापस आयी। रोते हुए दुलाली की माँ से बोली, "कादू, तुझसे जो कुछ कहती हूँ, वह अपने लड़के के लिए ही। दीनू हमारा नहीं है अब। वह सिर्फ़ दुलाली को पुकारता है। सो हमारे-तुम्हारे लिए लज्जा का विषय नहीं है ? बीमारी में पुकारता है। तुम्हें, भुइयाँ-देवर को पुकारता है। और क्या बोलेगा !"

दुलाली के बाबा बोले, "चलिये, बैठिये।" दुलाली की माँ से कहने लगे, "तुम भी चलो। नहीं जाने पर यदि दीनू को कुछ हो गया तो ब्राह्मण का शाप लगेगा। अगर ठीक हो गया तो लोग कहेंगे कि देखने नहीं गये।"

दीनू मर जायेगा, इस संभावना से वे ज़्यादा कातर हो उठे। दुलाली की माँ सीधी है। बोली, "दुली को बुलायेगा नहीं? एक साथ रहे हैं, आज का संबंध है क्या?"

बाप-माँ और जेठी माँ के साथ दुलाली भीतर घुसी। लाल आँखों से देखता हुआ दीनू बोला, "बैठी रहो। मेरे मरने के बाद उठना।" कुटुम्बी-स्वजनों से भरा घर। उनकी कौतूहल-भरी आँखों ने जैसे दुलाली को नंगी कर दिया। लज्जा-भय-वेदना से दुलाली मूर्तिवत बैठी रही।

दो दिन बाद ही ज्वर उतर गया। दुलाली और सारे लोग लौट आये। दीनू के परिवार वाले एक मास बाद लौटे। उसके बाद दुलाली के बाप को एक दिन बुलाया दीनू के बाप ने। कहने लगे, "जवान लड़की है, फिर विधवा भी। सावधानी में रहना होता है, महानंद!"

"क्यों?"

दीनू के बाप की आँखें अप्रकृतिस्थ हैं। किसी कारणवश जीवन का केंद्र-बिंदु विस्थापित हो गया है। बोले, "दीनू ने कहा है कि विधवा-विवाह शास्त्र और क़ानून-सम्मत है। वह दुलाली से विवाह करेगा।"

दोनों इस बात के आघात से जड़वत बैठे रहे, बहुत देर तक।

फिर दुलाली के बाप ने कहा, "आप-अपने लड़के की शादी कर दीजिये। मैं अपनी लड़की को क़ाबू में रखूँगा। पर आपने यह क्या कहा, ठाकुर दादा? यह अविश्वसनीय बात है। बीमारी में क्या दीनू का दिमाग़ चल गया था?"

"लड़की से कुछ मत कहना। वह क्या यह सब जानती है? सारा दोष दीनू का ही है। लड़की से कहने पर बात बढ़ेगी।"

"लड़के का क्या करेंगे?"

पिता का आर्त्त-हृदय विचलित था। वैसे चैलेंज भी था। "मेरी लड़की दोषी नहीं, दोषी नहीं हो सकती। मेरी बेटी ने मेरी जानकारी में एक क्षण के लिए भी कभी रंगीन धागा नहीं बाँधा। कभी ऊँचे गले से बात तक नहीं

की।"

"दीनू का ही दोष है। लेकिन महानंद, लड़कों का दोष चला जाता है। लड़की का दोष नहीं धुलता।"

"लड़के की शादी आप कर दीजिये।"

विचार-विमर्श में पड़े महानंद घर लौटे। पत्नी को सारी बातें बतायीं। दोनों चुपचाप बैठे रहे। फिर दुलाली को बुलाकर बोले, "घर से बागान तक भी न जाना, दुलाली ! यह मेरी चेतावनी है।"

"मैं तो कभी जाती नहीं, बाबा !"

"तो ठाकुर-दादा ये सारी बातें क्यों बोल गये मुझ से ? क्यों बोले, दीनू...तुझे...?"

"मैं कुछ नहीं जानती, बाबा !"

पता नहीं, कहाँ से दुलाली को साहस मिल गया था। वह जान गयी थी कि वह दोषी नहीं। प्रेम पाप नहीं। माँ-बाबा को यह बताना भी संभव नहीं।

"कोई दोष तो नहीं किया, बेटी ?"

"नहीं बाबा, कोई नहीं।"

"जानता था, जानता था।"

"तब क्या नहीं जाऊँ थान पर ?"

महानंद को कन्या के स्नेह से साहस मिला। बोले, "जाना। जैसे जाती थी वैसे ही जाना। मेरा मन कहता है, तूने कोई दोष नहीं किया।"

"ठाकुर-जेठा को बोलो, लड़के को गाँव से ले जायें। कहो, शादी कर दें। मैं उसके चलते कुछ भी नहीं सुन सकती। तुम्हें अगर कोई कुछ कहेगा तो मैं आत्महत्या कर लूंगी।"

प्रेम करके कोई पाप नहीं किया उसने। प्रेम पूरा नहीं होगा, यह भी वह जानती है। लेकिन निर्लज्ज भाव से सारी बातें कह कर गाँव में बदनामी करवाने के कारण वह दीनू पर क्रुद्ध है। साथ-साथ ही असह्य पीड़ा भी है आनन्द की। दीनू ने साफ़-साफ उससे शादी करने की बात की है। थान से लौटते समय रास्ते में दीनू मिला।

"हट जाओ, दीनू !"

"तुमने चाचा से क्या कहा ?"

"तुम्हारी शादी की बात कही है।"

"तुम्हें प्यार किया है तो शादी किससे करूँगा ?"

"दीनू, अगर तुमने शादी नहीं की तो मैं आत्महत्या करूँगी।"

"तेरे साथ मेरी शादी नहीं हो सकती, दीनू ! मैं जब तक जिऊँगी आज बाप के घर का, कल भाई के घर का आसरा लेना होगा, इसी गाँव में। क्या मेरा सहारा छीन लेना चाहते हो तुम ?"

"एक बार कह दो, मुझे प्यार करती हो।"

"प्यार करती हूँ, तुम भी जानते हो।"

"फिर से कहो।"

सिर उठाकर रानी-जैसे स्वच्छन्द स्वर में दुलाली ने कहा था, "हाँ, प्यार करती हूँ। जब तक ज़िन्दा रहूँगी, करूँगी। लेकिन इस जीवन में, इस प्यार का कुछ नहीं बनने वाला है। तुम शादी कर लो। तुम्हें प्यार करके, दीनू...तुम्हारे लिए मैं दर्द सह सकती हूँ...। तुम्हारे जाने पर मन नहीं लगता...। तुम्हें प्यार करके यदि मैं तुमसे शादी करने के लिए कह सकती हूँ तो क्या तुम मुझे प्यार करके शादी नहीं कर सकते ?"

"कर सकता हूँ या नहीं, दुलाली, देखूँगा।"

"मैं जाती हूँ।"

"रास्ते में संभलकर जाना। अंधेरा हो गया है।"

दुलाली लौट आयी घर। फिर एक दिन सुना गया कि दीनू की शादी होने वाली है, पाटक में ही। उसकी दीदी की ननद के साथ। दीदी के ससुर मरे हैं अभी-अभी। एक बरस का शोक रहेगा। एक साल बाद शादी होगी। फिर सुना गया कि दीनू कलकत्ता जा रहा है। वहाँ छापाखाने में काम सीखेगा। बहन के पति ने सब ठीक किया है।

उस दिन दुलाली सयंमित नहीं रह पायी। नदी की धार के पास, टीले पर चढ़कर पेड़ से लिपट गयी थी। बैलगाड़ी जा रही थी। दीनू की आँखें गाँव पर लगी थीं। दीनू उसे देख नहीं पाया। उसने आँख भर के देख लिया था। बीमारी के बाद दुबला चेहरा, गोरा रंग, बाल छोटे, मुंह

पर एक अद्भुत हँसी। उस हँसी को देखने पर कलेजा फटा पड़ता था।

शादी का दिन सहज ही नहीं मिल पाया। 1924 के नवम्बर में शादी होगी, यही तय हुआ। बाजे बजे। नये बरतन-भाँडे बने। जानने में आया कि बारात के लोग पेड़ के नीचे चाँदनी लगा कर बैठे। शाम को तीन बजे गाँव से निकलेंगे।

सरदियों के दिन। समय जल्द बीतता है। महानंद शादी में मछली और भात देंगे। दही-मिठाई भी। बहू को मोहर भी देंगे। पेड़ के नीचे रोशनी थी। दीनू बैठा था। दुलाली नहीं गयी कहीं भी, सारे दिन। घर से निकली ही नहीं। किसी से कुछ कह नहीं सकती, कलेजा फटा जा रहा था। अपने सूखे बालों में उँगलियाँ फँसाये, बदन पर आँचल लपेटे वह धीरे-धीरे चलती हुई अपने आँगन में आ खड़ी हुई। दूर है, पर देख तो सकती है। चेली की धोती और गरद का कुरता। बदन पर शाल, ललाट पर तिलक, कान में कुंडल। यही वंश का नियम है।

दीनू वहीं बैठा है। बैठे-बैठे उसने आँखें खोलीं। उसे देखा। देखा, वह उठ खड़ा हुआ, गले की माला तोड़ दी, शाल उतार कर फेंक दिया, कपाल का तिलक पोंछ डाला।

कन्या-पक्ष के जो लोग दीनू की अगवानी करने आये थे, उन्हें संबोधित करता हुआ वह चीख़ा, "आप लौट जाइये। मैं शादी नहीं करूँगा।" इस भीषण और प्रचंड स्वर ने आकाश को चीर दिया था, जैसे प्रलय की सूचना दी हो।

बाँस के मचान पर लेटे-लेटे आज चौवन बरस बाद भी सब-कुछ याद आ रहा है। जैसे चित्र सँजोकर रखे हों। जैसे उसे किशोरावस्था के चित्र दिखाने के लिए पटवार आता था। धीरे-धीरे पट खोलता, तसवीरें दिखाता, गीत गाता और चित्रों की कहानी सुनाता था। पटवार कौन था, कौन है, कहाँ चले गये सब ? उसके कैशोर्य-यौवन के साथ ही जैसे सब गुम हो गये हैं...जाने कहाँ ? आज उसके मन में बैठ कर कौन पटवार चित्र के बाद चित्र दिखा रहा है ? सारी बातें बता रहा है ? दर्द है कलेजे में। यादों का बोझ है तो दर्द क्यों न हो ? गाँव में जैसे प्रलय आ गयी है। अब भी सारे चित्र काँप उठते हैं, थर्राते हैं, टूट जाते हैं।

ठाकुर-जेठा बोले थे, "तू मेरा लड़का नहीं। दूर हो जा अभी, मेरे सामने से !"

"जाता हूँ, जाता हूँ।"

दौड़ता हुआ आया था दीनू। चीख़ता हुआ कहने लगा था, "चल, दुलाली ! इसके बाद अगर तू यहाँ रही तो जीवन-भर तुझे यंत्रणा होगी।"

दुलाली बेहोश हो गयी थी।

दीनू गाँव छोड़ कर चला गया। क्रोध से, अपमान से, लज्जा से ठाकुर-जेठा ने खड़ाऊँ फेंक कर मारी थी। ललाट फट गया था उसका। बाद में इसी दाग़ के ज़रिये बदन ख़ाँ ने उसकी शिनाख़्त की थी।

गाँव गुम-सुम था। सब भुईयाँ की प्रजा हैं। वे कुछ नहीं बोलते। राजा-राजा की लड़ाई है। ठाकुर-जेठा ने महानंद को श्राप दिया। दोनों परिवारों ने परस्पर दोषारोपण किया। दुलाली घर के कोने में पड़ी रही। दीनू की खोज चलती रही।

उसके बाद !...बाद में वह भयानक—महाभयानक सुबह। ठाकुर-बाड़ी से जेठी-माँ का आर्त क्रंदन, "दीनू ने रेल में डकैती डाली है। पकड़ा गया है, उसे फाँसी होगी। रे दीनू...रे...ए...ए...ए !"

उसके बाद फाँसी की ख़बर। ठाकुर-जेठा दालान पर खड़े होकर बोले थे, "घड़ा लौटा दिया, भगवान लौटा दिया। मेरे लड़के को तुम्हारी लड़की ने खा लिया। तुम्हारे भगवान की पूजा नहीं करूँगा। तुम्हारी ज़मीन पर भी नहीं रहूँगा। शाप देता हूँ—निर्वंश हो जाओ, निर्वंश हो जाओ !"

फिर आयी पुलिस, गाँव में। पाटक से हाथी आया था। पुलिस, और पुलिस। घर से उन्होंने ठाकुर-जेठा को, जेठी को, औरत-मर्द--सभी को लात मार कर बाहर निकाला। हाथी को अंकुश मारता था महावत और हाथी घर तोड़ देता था। ठाकुर-जेठा बाबा से बोले, "कुछ किसी का नहीं है। माँ का है, सब जाये।"

फिर पुलिस-दरोगा के सामने सर पटक दिया, बोले—"लड़का गया, घर गया, अब आप दया करके हमारे ऊपर भी हाथी चला जाइये। आपके पैर पड़ता हूँ।"

दरोगा चीख़ उठा, "क्या करते हैं आप ? मैं कायस्थ हूँ।"

"मैं क्या हूँ ?" ठाकुर-जेठा ने दोनों हाथों को ऊपर उठाया और जैसे तमाम विश्व को संबोधित करते हुए बोले, "मैं क्या हूँ ?"

"आप ब्राह्मण हैं।"

"ब्राह्मण...मैं ?...तभी लड़के को फाँसी चढ़ाया, डोम ने दाह-संस्कार किया ! तुम्हारे सिपाहियों ने हमारे कुटुम्बियों को हाथ पकड़कर खींचा ! अब इसके बाद भी ब्राह्मण हूँ ?" उनके आर्तनाद से सभी दुखी हो गये और दरोग़ा भी बगैर कोई बात बढ़ाये चला गया।

बाबा ने ठाकुर-जेठा के पाँव पकड़े थे। ठाकुर-जेठा बोले थे, "तुम्हारी लड़की अभी ज़िंदा है, महानंद ! संतान-शोक नहीं हुआ। तुम पर कौन-सी विपत्ति टूटेगी, इसी से परेशान हो। तुम्हारा भगवान क्यों लूँ ? तुम्हारा विग्रह ? होने दो सर्वनाश, होने दो ! अब यदि तुम्हारा सर्वनाश हुआ तो मुझे शान्ति ही मिलेगी। लड़की द्वारा हमारा इतना बड़ा सर्वनाश कराया !"

ठाकुर-जेठा जा रहे हैं, जा रहे हैं। बाउरी, माँझी लोग उनके साथ हैं। वे उन्हें पसंद करते थे। वे जब पेड़ के नीचे रात काटते, तो माँझी पहरा देते थे। चार दिन, बयालिस मील, तब खड़गपुर आता है। रेल-टाउन से कोई आकर चुपचाप रुपया दे गया, टिकट कटा गया। वे तब जगन्नाथ-धाम चले गये। उसके बाद कौन कहाँ गया, कुछ पता नहीं। आदमी भी शायद गुम हो जाते हैं, दुलाली के अभिशप्त यौवन की तरह।

भुइयाँ-बाड़ी में महानंद ने कहा था, "दुलाली को काटकर फेंक दूंगा।" उनकी भी स्थिति दयनीय थी। उनकी लड़की एक प्रवासी, राजद्रोही, फाँसी-चढ़े दीनू से प्रेम करती है। दीनू के पिता निर्दोष हैं। उनका घर बरबाद हो गया। मनसा के पूजा का कुल-कार्य, पूजा छोड़कर पुजारी चले गये। देव-क्रोध, ब्रह्म-दोष, राज-क्रोध गाँव के ऊपर टूटा। सब इसी दुलाली के कारण। दुलाली की माँ ने पति के हाथ में कटार देकर कहा था, "उसे अकेले काटने से क्या होगा, मुझे भी काटो। उसके बाद तुम, लड़के—सब फिर से संसार बसाओ।"

"तुम्हारे कहने से ही सब-कुछ होता है क्या ? समाज नहीं है क्या ?"

"समाज ने उसे काट देने को कहा है क्या ?"

"समाज ने फेंक देने को कहा है।"

"फेंक दो। मैं भी साथ जाऊँगी। माँ-बेटी भीख माँग कर खा लेंगी।"

"उसके कारण सर्वनाश हुआ, फिर भी तू उसे नहीं छोड़ती !"

"कौन-सा है छातिम का समाज ? तुम ही तो समाज हो। तुम जो कहते हो, वही होता है। कौन-सा समाज...किससे डराते हो ?"

दुलाली को मार देने से समस्या का समाधान हो सकता था। लेकिन माँ ने बाधा पहुँचायी भीतर से। बाहरी बाधा अप्रत्याशित रूप से एक और तरफ़ से आयी। दासू माँझी के पिता बूलन सोरेन ने कहा, "जाने से पहले दीनू ठाकुर हमसे कह गये थे कि दीदी की देखभाल करते रहना। उसे आप मार नहीं सकेंगे। अगर ऐसा हुआ तो हम सबको फूंक देंगे। दीनू ठाकुर के लोगों को ख़बर कर देंगे।"

महानंद गृहस्थ आदमी थे। ऐसी प्रचंड विपर्ययपूर्ण स्थिति के कारण नृशंस हो उठे थे। बाधा पाकर स्थिर हुए। लेकिन वे ही तो गाँव की नाक थे। घर के पाप को दबाना उनका ही काम था। उनकी लड़की के कारण ही गाँव पर देव-क्रोध का प्रकोप हुआ।

घर की ही एक कोठरी में दुलाली को रख दिया गया। नयी कोठरी में संसारियों का प्रवेश-निषेध। चावल-दाल, तेल-नमक, लकड़ी-किरासिन, कपड़े-तौलिया—सबकी व्यवस्था कर दी गयी। तब से यही जीवन है। माँ जब तक जीती रही, आती थी, बाहर बैठती थी। माँ रोती थी। दुलाली में रोने की भी शक्ति नहीं। रात-दिन बस एक ही खयाल आता था कि उसकी बात क्यों नहीं मानी, क्यों नहीं चली गयी मैं उसके साथ ? छातिम के बाहर भी तो दुनिया है। सोचती थी, क्यों...किसके मान-सम्मान की बात सोच कर उसे 'नहीं' कह दिया था ? दीनू नहीं है, फिर कभी नहीं लौटेगा—यह बात मानना संभव नहीं है।...कितने दिनों तक असीम कष्ट हुआ था ! फिर धीरे-धीरे वह कष्ट कम होता गया। सदानंद तब आठ वर्ष का था। आज सदानंद बासठ साल का बूढ़ा है। घर का मुखिया। कौन कहाँ गया ? कहाँ थी ठाकुर-बाड़ी ? कब, कौन, दूर से उसे देखकर 'शादी नहीं करूँगा' कहते हुए उठ कर चला गया था ? सब बीती बातें हैं। सब झूठ हो गया। रह गयी सिर्फ़ उदर की ज्वाला, समय काटने की ग्लानि।

नवीन की नौकरी के बाद उसे कोई कष्ट नहीं होगा।

वह सो गयी। सोने से पहले उसने सोचने की चेष्टा की। उस दिन दीनदयाल और दुलाली की अनुभूति...क्या थी ? नहीं, कुछ याद नहीं आता। सरदियों का आकाश, मलिन किरणें, पतले मेघों का जाल, हवा, हवा के साथ पके कदम्ब की खुशबू। कभी-कभी भोंपू बज उठता। ठाकुर-बाड़ी के बाहर एक बड़ा पाकड़ का वृक्ष है। उसके नीचे चाँदनी तनी है। ऊँची कुरसी पर वर बैठा है। आग जैसा रंग, सीधी नाक, हलके भूरे बाल, ललाट पर तिलक, कान में कुंडल, गले में गेंदे के फूलों की माला।

उसे ही देखती है और फिर देखती है। एक लड़की शिरीष के पेड़ से लगकर खड़ी है। सफ़ेद धोती पहने हुए। सरदी के कारण साड़ी लपेटे है, कस कर। मोटे बालों का जूड़ा। लड़की की भौंहें तीखी, खिंची हुई। नाक छोटी, बदन का रंग अलसी के फूल जैसा। आँखें काली, बड़ी-बड़ी।...अपलक देखे जा रही है। वर किसी के साथ बात कर रहा था। फिर उसने अचानक आँखें उठायीं। बातें बंद हो गयीं। मुख खुला, बन्द हुआ। वह उठ खड़ा हुआ। उसने गले से माला खींच कर तोड़ दी, बदन पर से शाल उतार कर फेंक दिया। बोला, "आप लौट जायें ! मैं शादी नहीं करूँगा।"

हाँ, कोई और दुलाली, किसी और दीनू की छवि। बस तसवीरें ही मन में हैं। वे ही बातें करती हैं। लेकिन उनके साथ जुड़ना अब संभव नहीं। चौवन साल बहुत होते हैं। बहुत जी लिया, बहुत दिन। अठहत्तर बरस काफ़ी उम्र होती है। इतने दिन तक कोई नहीं बचता। माँ कहती थी, "शरीर की शांति नहीं हुई, पेट में बच्चा नहीं हुआ। मैं तो मर रही हूँ, दुलाली ! तू कितने दिन बचेगी, सोच कर डरती हूँ।"

अब कोई नहीं है इस गाँव में, जिनके साथ छोटी उम्र में खेलते हुए गाती थी दुलाली—

"एक पाँव पानी
कदम के तले।
दो पाँव पानी,
रसा तले।"

वे अब कहाँ हैं ? मर के भूत बन गये हैं ! जहाँ खड़ा होकर दीनू दुलाली को

तकता था उस बागान में, अब फणि-मनसा का मानक जंगल है। बहुत जी ली वह। समय उसे पीछे छोड़ कर, फेंक कर आगे निकल गया है। दीनू स्मृति में रह जायेगा, चौबीस साल के रूपवान पुरुष के रूप में। दुलाली अब अठहत्तर साल की बूढ़ी है। चल-फिर सकती है। इस जीवन में पुरुष का संग नहीं मिला। सदानंद की लड़की ने कायस्थ से शादी की है, मामा के घर में रहती है। सदानंद की पत्नी के किसी भाई ने शायद केवट की लड़की से शादी की है। दुर्गापुर में रहता है। लड़की नर्स है। अब किसी की जाति नहीं जाती, कलंक नहीं लगता। समय का कैसा फेर है! बचना, बचे रहना वृथा है। सिर्फ़ नवीन, दीनू जैसा ही है। उसके जीवन की सांध्य-वेला में एक ही व्यक्ति आत्मविश्वास से उसे नयी ज़िंदगी में ले जायेगा। सांध्यवेला! फूल चुनने का समय, रूप-कथा सुनने का समय। दुलाली की यौवनावस्था में दालान के सामने ही बेला फूलते थे खूब। माँ कहती, "चार-पाँच तोड़ कर फेंक दे, बेटी! इतने फूल पेड़ की जान ले लेंगे। फल नहीं होगा।"

फूल तोड़कर दुलाली बैठती थी ज़मीन पर। बूढ़ी दासी और आंदि-मणि तब दुलाली के छोटे भाई-बहनों को थपकियाँ देकर सुलाते और रूप-कथाएँ सुनाते थे—"तब चाँद की रोशनी छिटक रही थी। राजकन्या के मुख पर भी चाँद ने रोशनी फेंकी। बोले, ऐ लड़की, मैं तुम्हें चाहता हूँ।"

जीवन की सांध्यवेला में फूल तोड़ने और रूप-कथा सुनने वाली घड़ी में नवीन कुछ बातें कह कर जैसे संजीवनी दे गया है। एक पक्के रास्ते के सहारे वह नये समय को कान पकड़ गाँव तक लायेगा। गाँव में सरकार द्वारा एक स्वास्थ्य-केंद्र भी खुलवायेगा।

हाँ, उनका भला हो। छातिम ग्राम ने क्या दोष किया है कि चिरकाल तक अँधेरे में पड़ा रहे? रोशनी के नाम पर किरासिन लैंप, बाजे के नाम पर टेम-टेमी, रास्ते के नाम पर एक कच्चा-पथ! साँप काटे तो ओझा, बीमार हो तो रतन नाई की झाड़-फूंक। या फिर पाटक से डॉक्टर लाओ।

उनका भला हो।

कई दिन बाद नवीन आया और उसे बुला ले गया। बोला, "क्या देख रही हो, बोलो तो ?"

"देख रही हूँ आगे।"

माँझीपाड़ा और बाउरीपाड़ा के सभी लोग ठाकुर-बाड़ी का जंगल काट रहे हैं।

"वहाँ क्या होगा ?"

"मूर्ति लगायी जायेगी। मैंने ही पंचायत में अर्ज़ी दी है। उसी खँडहर में मूर्ति लगेगी। गाँव के लेवर से जंगल साफ़ कराऊँगा।"

"पाकड़ का पेड़ भी कटेगा ?"

"नहीं बुआ, इतना बड़ा पेड़ कहीं काटा जाता है ? अब, वहाँ पेड़ ही कितने रहे हैं ! इमली और कटहल के पेड़ बेच दिये जायेंगे। रुपये पंचायत के काम में लगेंगे।"

"तेरे कहने से वहाँ मूर्ति बिठायी जायेगी क्या ?"

"सिर्फ़ कहने से क्या होता है, बुआ ! नौ मन तेल हुआ है तभी तो राधा नाच रही है।"

कई दिनों तक पेड़ों की कटाई चलती रही। शहर के ठेकेदार ने आम, इमली और कटहल के पेड़ खरीदे। लोगों ने भी काफ़ी जलावन जुटा लिया। सूखे पत्तों में आग लगा कर खँडहर को शुद्ध किया गया।

उसके बाद चारों तरफ साफ़-सुथरा करने में, पानी ला-ला कर दालान को धोने में ही काफ़ी दिन लग गये। दासू सोरेन ने नवीन से कहा, "लेवर दिया। सफ़ाई हुई। देख, बयालिस लोगों ने सात-दस दिन खटकर काम किया है।"

"खर्चा निकल आयेगा रास्ता होने पर। जिन्हें नहीं मिला, उन्हें डबल मिलेगा।"

"रास्ता बनेगा न ?"

"बनेगा, यही तो कहा है। पी० डब्ल्यू० डी० की सैंक्शन भी आ गयी है।"

"मूर्ति कहाँ लगायी जायेगी ?"

"वहीं।"

"किसके ऊपर लगेगी ?"

"वेदी बनेगी।"

"यह तो राज-मिस्त्री का काम है।"

"यह काम सरकार करेगी।"

"सरकार ?"

"देखूंगा। शहर जाऊँगा।"

सदन ख़ाँ वाह-वाह कर उठा। बोला, "नवीन देश का गौरव है। तुम लोग ग़रीब गाँव के आदमी होकर इतना कर गये। वेदी मैं बनवा दूंगा। ज़रा पता कर लूं कि कितनी बड़ी वेदी बनेगी। राज-मिस्त्री मैं भेज दूंगा।"

"रास्ते की बाबत कुछ पता चला ? कब शुरू होगा ?"

"मैं नहीं जानता। तुमने क्या सुना है ?"

"एम० एल० ए० ने बताया है कि सब हो जायेगा। यही सुना है।"

"तब और क्या रहा ? छातिम में रास्ता बन जाने पर पाटक, कन्नति और क़ान्दोर को भी लाभ है।"

"इसीलिए तो कहा है। रास्ता हो तो हमारा क्या है ? पाटक में आपके भी तो खेत हैं। छोटी दुकान। अब तक तो बैल-गाड़ी में सामान लाते थे, अब लॉरी लायेगी। मेरा तो कोई कारोबार नहीं है। रास्ता हो जाये तो गाँव में मूंगफली और गेहूँ बोऊँगा।"

"ठीक है, ठीक है। मूंगफली तो कैश क्रॉप है। गेहूँ भी वहाँ अच्छा होगा।"

"हम एक बाँध गाँव के लेबर से बनवा लेंगे।"

"अति उत्तम ! सच नवीन, मन से कह रहा हूँ, यह जो तुम दस लोगों की बात सोचते हो, दस का पक्षधर होकर काम करते हो, यह मुझे भी अच्छा लगता है। मैं क्या इसमें कोई ख़राबी देखता हूँ ? बाप जो काम छोड़ गया है, उसी को बढ़ा रहा हूँ।"

नवीन वहाँ से एम० एल० ए० के घर गया। वे बोले, "रास्ता ज़रूर बनेगा।" अचानक वे मंच पर भाषण देते हुए नेता बन गये। "बनेगा नहीं का क्या मतलब ? सारा विकास और जगहों पर होता रहेगा क्या ? छातिम

दीनू ठाकुर का गाँव है। वह क्या अंधकार में पड़ा रहेगा ? रास्ता बनाना ही पड़ेगा। उसी रास्ते से गाँव के श्रमजीवी बाहर निकलेंगे और मेहनत से अर्जित धन लेकर वापस लौटेंगे।"

नवीन समझता है, बाबू का 'फ़्लो' आ गया है और अब स्रोत में बाधा देना ठीक नहीं है। इसके बाद बात घुमाता हुआ बोला, "आपके लिए वोटों से पहले भी बहुत काम किया है। पंचायत का भी काम किया है। अपने लिए कुछ नहीं माँगता।"

"प्रेस में काम क्यों सीखते हो ? घर में झगड़ा है क्या ?"

"नहीं, नहीं, ऐसे ही। देखिये, रास्ता न होने से बीमारी, दुर्घटना, विपत्ति वगैरह में बड़ा कष्ट होता है। रास्ता हो तो अच्छा रहेगा। रास्ते के कारण तेमुखी गाँव तक दमकल पहुँच जाती है। ऐम्बुलेंस जाती है शहर से।"

"हाँ, जाती तो है। पर गाँव भी तो शहर के पास है।"

"हाँ, यह भी जानता हूँ कि छातिम दूर है। यह आशा नहीं कि छातिम में दमकल जायेगी, ऐम्बुलेंस जायेगी। ऐसा नहीं होगा। पर रास्ता होने पर...।"

"जानता हूँ। रास्ते का महत्व बताने की ज़रूरत नहीं। लेकिन...।"

"क्या ?"

"दूसरे गाँव ने यदि 'क्लेम' किया तो ?"

"यह आप क्या कह रहे हैं ? तीन साल से दौड़-धूप करके मैं मर रहा हूँ। और कोई दूसरा गाँव...।"

"जानते हो, हमारे एम० पी०...।"

"वे भी जानते हैं।"

"एम० पी० लोगों ने...अब देखो...अपने इलाक़े का चेहरा ही बदल दिया है।"

"देखें, क्या होता है !"

प्रेस के मुरारी बाबू ने सारी कहानी सुनी। वे बड़े निराशावादी हैं। बोले, "इतना बोलता है अगर, तो रास्ता नहीं बनेगा।"

"नहीं, नहीं बनेगा ? इतनी चेष्टा की है, इतने दिनों से। क्यों नहीं

बनेगा ?"

"जैसी चेष्टा तुम कर रहे हो, वैसे ही चेष्टा दूसरे नहीं कर रहे हैं क्या ? तुम्हें क्या कुछ पता है ? इन्होंने यदि चेष्टा नहीं भी की हो तो क्या है ? इसके बाद क्या वे इस अंचल में पैसे लगायेंगे ?"

"हज़ारों रुपयों की ज़रूरत ही क्या है ?"

"नवीन, तू बातें चाहे जितनी कर ले, बुद्धि से तेज़ नहीं है तू। कहता हूँ, मूर्ति आयेगी कैसे ? ट्रक में। मंत्री-शंत्री, हाकिम-वाकिम कैसे आयेंगे ? जीप में। जीप और ट्रक कैसे आयेंगे ? रास्ते से। रास्ता कहाँ है ? तो इस तरह चाहे जैसे भी हो, रास्ता बनाना ही होगा। हाइवे से तुम्हारे गाँव तक तो खेत हैं, मैदान हैं, धान के खेत हैं और कर्णावती का पाट भी है। वहाँ तक कच्चा रास्ता बनाने में पैसा नहीं चाहिए क्या ?"

"उस रास्ते के लिए अगर फ्री लेवर की जुगाड़ करूँ तो ? माल-मसाला तो इतना लगता नहीं।"

"अब इस पचड़े में पड़ने से कोई फ़ायदा नहीं। अरे, दस भुशुंडि काकों के मरने पर यह मुरारी पैदा हुआ है। सब जानता हूँ मैं। यह पी० डब्ल्यू० डी० का झंझट है। उसे निबटने दो। उस एम० एल० ए० से कह दो कि रोड-लेबर के रूप में गाँव के लेबर खटेंगे। उनका रेट दो पैसा होता है।"

"यही कह देता हूँ।"

एक शहर है, लेकिन बड़ा नहीं। लेकिन इस 'टाउन' के लोगों की मानसिकता इस तरह की पेंचदार है कि नवीन परेशान हो उठा है। बाद में वह सारी बातें छोड़कर गाँव लौट आया।

गाँव में भी मतैक्य नहीं है। उसके घर में ही लोग बँटे हुए हैं।

सदानंद बोले, "नवीन, यह जो 'रास्ते-रास्ते' की रट लगाकर आनन्दित हो रहे हो, उसका नतीजा जानते हो ?"

"क्या नतीजा होगा ?"

"रास्ता हो तो क्या होगा ?"

"वह तो आप भी जानते हैं, पिताजी !"

"कैसी उन्नति होगी ! शहर जाते रहते हो। वहाँ की तरक़्क़ी देखी ही होगी। अभी भी गाँव का चाल-चलन शरीफ़ों का-सा है। लड़कियाँ

नाइलॉन नहीं पहनतीं। लड़के कानों से ट्रान्ज़िस्टर लगाये नहीं घूमते। वहाँ तो बहुत बदमाशी है। इसीलिए ग़रीबी भी बढ़ रही है।"

"अब ये बातें रहने दीजिये।"

"तुम्हें यह बातें ज़हर लग रही हैं, जानता हूँ। फिर भी कहता हूँ कि बाहर कौन-सी अच्छी बात देखी है तुमने? सब तरफ़ तो 'हा-भात, हा-भात' का हाहाकार मचा है। रास्ता बनाने से क्या लाभ होगा? बाहर के बदमाश अंदर घुसेंगे। इसमें भला क्या है?"

"देखा जायेगा।"

"भला होगा। खेतों में काम करने और घर बनाने के लिए, बहुत-से छोटे-मोटे कामों के लिए लोग नहीं मिलेंगे। सारे बेटा लोग भाग जायेंगे। या फिर कहेंगे कि बाहर वालों के समान मजूरी दो।"

"यदि आप उतनी मजूरी दे सकें दीजिये, वरना मत दीजिये। यदि आपकी औक़ात आठ आना और भात-मूढ़ी से आगे की नहीं है, तो मत दीजियेगा। उन्हें दो पैसे जहाँ से ज़्यादा मिलेंगे, वहाँ वे नहीं जायेंगे क्या? आपके आसरे बैठे रहें?"

"तुम तो यही कहोगे। अपनी मिट्टी से तुम्हें मोह तो है नहीं।"

"नहीं है, सच में नहीं है। यह ज़मीन, आपका राज, इससे किसका भला हुआ है?"

"इसी ज़मीन का अन्न खाते हो तुम।"

नवीन हँसा। बोला, "आपका जो है, वह मेरा भी है। यह तो देवता की ज़मीन है।"

"अच्छा! यह ज्ञान किसने दिया, जरा सुनूँ तो?"

"जिसे देना चाहिए।"

"उसी डाइन ने?"

"उसकी हालत भी मेरे समान ही है। उस डाइन के पास तीस तोले गहने थे। वह धन भी आपके पास ही गया है न?"

"नवीन, जो नहीं जानते वह...।"

"जानने की ज़रूरत नहीं। आप अपना हिसाब देखिये। आप लोगों के कारण ही हमारे गाँव की यह हालत है। कुएं के मेंढक बनने से आजकल

कोई काम नहीं चलता। रास्ता अगर होता तो पिता जी, आपका छोटा लड़का न्यूमोनिया से नहीं मरता। उसे तुरंत अस्पताल ले जाया जाता।"

"हाँ, ले जाते। अस्पताल की डाक्टरी से अगर लोग बचते होते तो शहर में लोग मरते ही नहीं। तुम भी मरोगे, नवीन! ज्यादा अच्छा बनने के फेर में मरोगे।"

"दीनू ठाकुर भी मरे थे न ?"

"किसके साथ किसकी तुलना की आपने ? उनके साथ मेरी तुलना हो सकती है क्या ?"

सदानंद अचानक क्रोधित हो उठा। बोला, "यदि चाँद-सूरज सत्य हैं तो श्राप देता हूँ कि रास्ता नहीं बनेगा, नहीं बनेगा, नहीं बनेगा ! ऐसे ही लीडर हैं वे ! बाहर सज्जन, घर में बाप के सामने अभद्र !"

"बुआ को चावल-दाल-नमक-तेल ठीक से दीजियेगा, वरना मैं हंगामा खड़ा करूँगा। याद रखना, खलिहान बंद कर दूँगा। मैंने अगर मना कर दिया तो कौन आपकी ज़मीन पर काम करेगा, देखूँ !"

अब सदानंद घबराया। बात बढ़ाने से फ़ायदा नहीं। दीनू ठाकुर की मूर्ति के बारे में दीदी कुछ न बके, वह नवीन से यही कहना चाहता था। लेकिन बोला कुछ नहीं। नवीन अच्छा है तो अच्छा रहे, बुरा है तो बुरा रहे। और तो और, गाँव के सभी लोग सदानंद और उसके छोटे लड़के को नापसन्द करते हैं। नवीन उनका अपना है। नवीन को क्रोधित करना ठीक नहीं।

नवीन की माँ ने रात को सलाह दी, "नवीन से कहने की ज़रूरत क्या है ? चुपचाप जाकर उस डाइन को धमका आओ।"

"उस घर में जाऊँ ?"

"बाहर चौखट पर खड़े रहकर कहने में दोष नहीं लगता। देखो, अब ठाकुर का माहात्म्य ख़त्म हो गया है। उनके चलते ठाकुर-पूजा बंद हुई, पुरोहित भाग गये। ब्राह्मण का लड़का फाँसी चढ़ गया कि नहीं ? इतने व्यक्तियों को काट-पीटकर भी अजर-अमर बनी है। क्या अमर होकर आयी है ? हमारे लड़के को भी पराया कर दिया।"

"ठीक कहती हो। बाहर, चौखट से ही कहकर आ जाऊँगा। और, जो

वह यह कह गया है कि दाल-चावल...।"

"देती नहीं हूँ क्या ? कुछ नहीं खा कर ज़िंदा है क्या वह ?"

"नवीन तो...।"

"बड़ा गँवार हो गया है।"

किन्हीं व्यतिरेकों के वशीभूत होकर मनुष्य कभी-कभी सुख की अनुभूतियाँ खो देता है। काफ़ी दिनों तक अल्पाहार करने से जिस तरह सिर हमेशा झनझनाता रहता है, आँखों के आगे धुआँ-धुआँ दीखता है, उसी तरह इयूफ़ोरिया सहज ही आक्रमण कर सकता है।

उसकी भी यही हालत है। दीनू की मूर्ति लगेगी गाँव में। दीनू के घर का कायाकल्प। ऐसी सारी बातें गाँव में चल रही हैं आजकल। अतीत से वर्तमान में पहुँच रहे हैं लोग। उसका मन भी स्वप्निल नशे में है। न खाने से उसे लगता है कि वह धँसती जा रही है। चल नहीं सकती। उस हालत में भी वह प्रायः ठाकुर-बाड़ी पहुँच जाती है। आँखें भरकर उस साफ़-सुथरे भू-खंड को देखती है। चारों तरफ़ बेड़े हैं। देखती है, देखती रहती है। फिर चली आती है।

घर लौट कर पकाने-खाने की इच्छा रोज नहीं होती। थोड़ा-सा सत्तू खाकर सो रहती है। नवीन की दी हुई चादर पर हाथ फेरती है। वह यह चादर पहन कर दीनू के घर में घूमेगी। नवीन कहता है, मूर्ति नहीं, रास्ता ही दीनू ठाकुर की स्मृति होगा, उसके प्रति श्रद्धांजलि होगा। अब किसने सोचा था कि समय इस तरह बदल जायेगा ? वह समय और आज का समय !

'रास्ता होगा तो सब-कुछ बदल जायेगा। यही दीनू के प्रति श्रद्धांजलि होगी।" मूर्ति की स्थापना, नवीन के हिसाब से गौण है। मुख्य बात है रास्ता। ये बातें अब उसकी अपनी बातें हो गयी हैं। वह नहीं जानती कि कब से नवीन उसके लिए एक दूसरे चेहरे के साथ दीनू जितना महत्वपूर्ण हो उठा है।

नवीन ने कहा है, "रास्ते का नाम होगा—शहीद दीनदयाल ठाकुर रोड। रास्ता होने पर ही धीरे-धीरे गाँव में स्कूल, हेल्थ-सेंटर—सब बनेंगे।

स्कूल का नाम होगा—दीनदयाल स्मृति विद्यालय।"

वह खूब हँसती है। सस्नेह। अपने पोपले मुख से, क्षीण शरीर से, सफ़ेद बालों से, रेखाओं वाले ललाट से, ममतामयी आँखों से हँसती है। उसकी हँसी बड़ी ही विद्रूप और वेदनामयी दीखती है। नवीन का कलेजा फट जाता है। बुआ जैसे उपेक्षित ज़मीन है। अनादरपूर्ण ज़मीन जैसा फटा चेहरा। तब भी कुछ नहीं होता। प्यासी ज़मीन जैसे थोड़े जल से ही खुश हो उठती है, अपने ऊपर घास उगा लेती है, बुआ भी वैसी ही है। नवीन की थोड़ी प्यार-भरी बातें सुनकर गल जाती है। हमेशा हँसती है, जैसे राज-ऐश्वर्य मिल गया हो।

राजवंश की होकर भी वह है तो औरत ही। दासू सोरेन, रतन नाई, सदन ख़ाँ, मुरारी बाबू—सभी लोग अपने बचपन को याद करते हुए कहते हैं, "बुआ कितनी रूपवती थी! देखने पर लगता था कि देवलोक की कन्या है। चाल कैसी थी उसकी! कभी कोई ग़लत चीज़ नहीं देख पाया। लेकिन अब क्या से क्या हो गया है! सब नियति-चक्र है।"

नवीन बुआ, को और ज़्यादा प्यार करता है। बाप की तरह बुआ कभी भी अपने हाथों में उपलों में पका घी नहीं लगाती। बुआ की बात सत्य है। बुआ कहती है, "कब क्या था...मैंने ही क्यों, मेरे बाप ठाकुर दा; परिवार के स्वामी ठाकुर-दा, किसी ने नहीं देखा। हाँ, ज़मीन-जायदाद ज़रूर देखी है। वैसी जायदाद काफ़ी लोगों के पास थी। मिसिर लोगों के पास तो बहुत ज़्यादा।"

नवीन, अगर समय मिला तो बुआ को नरम बिस्तरे पर सुलायेगा। अच्छे कपड़े पहनायेगा। खुद पकाकर खिलायेगा। बिवाई-फटे पैरों में तेल मलेगा। सुगन्धित तेल देगा सिर में लगाने को। घर में किरासिन की लाल-टेन जला देगा। कब क्या हुआ था, जाति-धर्म के कारण...फिर सबों ने मिल कर बुआ का जीवन बरबाद कर दिया। तमाम ज़िंदगी छिन्न-भिन्न हो गई। ठाकुर-परिवार का पतन क्यों-कैसे हुआ? ब्राह्मण-लड़के ने भुइयाँ लड़की से प्रेम किया था। आजकल ऐसी शादियाँ खूब हो रही हैं। कोई परेशान होता है क्या इससे?

बुआ को देख कर कभी-कभी नवीन अत्यंत क्रोधित हो उठता है। कोई

सुनवाई नहीं है बुआ की। बुआ सिर्फ़ सहती आयी है। नवीन के बाप-भाई कैसा दुर्व्यवहार करते हैं! हिसाब बक़ाया है। सारा हिसाब बुआ ही क्यों चुकाए? और किस हिसाब से?

यह नवीन नहीं जानता। बहुत सोचता है वह। भावना-विभोर होकर शाम को घर लौटता है। यह उसे पता नहीं होता कि शाम की रोशनी कैसी होती है। गाँव-देवी की तरह गाँव की आत्मा है वह। जैसे वह कुछ स्नेह और ममता के साथ वापस समाज में लौटता है। गाँव डूब रहा है। ख़त्म हो रहा है।

उसके भुरभुरे बाल हवा में उड़े-उड़े जाते हैं।

जब सदानंद उसकी कोठरी के सामने आकर खड़ा हुआ तो उसे जैसे देखकर विश्वास ही नहीं हुआ।

"दीदी!"

"कौन?"

"मैं, सदा।"

"सदा?"

"सदानंद, नवीन का बाप।"

"नवीन को कुछ हुआ क्या?"

"नहीं, सुनो!"

"तुम...तुम्हें...जो कहना है, वहीं से कहो। मैं सुन लूँगी।"

"दीनू ठाकुर की मूर्ति लग रही है।"

"जानती हूँ।"

"तुम तो जानोगी ही। नवीन जो है...जाने दो। मुझे एक बात कहनी है। मूर्ति लगती है, लगे। जो होना है, हो। लेकिन तुम सामने नहीं आओगी। किसी को कुछ नहीं बताओगी।"

"मैं क्या बताऊँगी?"

"पहले जो होना था, हो गया। तुम्हारे कारण ही सर्वनाश हुआ। घर की पूजा-पाठ फेंक दिया था ठाकुर-जेठा ने। पिताजी के आग्रह पर भी नहीं ले गये वे विग्रह। देव-क्रोध से वंश-नाश हो गया। हम सिर उठाकर

नहीं जी सके। ये सारी बातें याद हैं ?"

"हैं।"

"कोई बात नहीं कहोगी किसी से। समाचार-पत्र के लोग आयेंगे। पुराने कलंक की बातों को खोदने से फ़ायदा नहीं। अगर कुछ कहा तो घर छोड़ना पड़ेगा। यह बात याद रहे।"

सदानंद चला गया। वह प्रस्तर हो कर बैठ गयी। फिर से वही बातें। वही स्मृतियाँ। उसने यंत्रचलित भाव से दरवाज़ा बंद किया। पानी पिया। फिर मचान पर चढ़ कर सो रही।

1924 में जो हुआ था, वह एक ट्रेजेडी ही थी। एक विस्फ़ोट और सब-कुछ ध्वंस। विस्फोट हुआ दीनू और उसके असफल प्रेम का। उसके बाद यह बात गौण हो गयी। मुख्य बातें, बाहर की बातें ही प्रकाशित हुईं, जैसे—दीनू को फाँसी, ठाकुर-बाड़ी में पुलिस का तांडव, उस तांडव के बाद महानंद और दीनू के पिता का विवाद।

पुजारी ने पूजित-विग्रह, पूज्य-विग्रह लौटा दिया था। तब से उसका जीवन अभिशप्त हो गया। सारी घटनाएँ इस तरह घटीं कि सोचना असंभव था। इतना बड़ा सर्वनाश जिसके कारण हुआ, उस लड़की को मारने से भी महानंद को शांति नहीं मिलती शायद।

"याद है।"

"सब-कुछ याद है।"

दीनू के चले जाने के बाद ठाकुर-जेठा का चेहरा ताल-वृक्ष की तरह रुक्ष हो गया था। भुइयाँ का नाम सुनते ही क्रोध। मनसा के पुजारी थे वे। 'नहीं' कभी कह नहीं पाये थे। पीतल की घट के ऊपर गढ़ी हुई मनसा की मुकुट-शोभित मूर्ति से हमेशा पूछते रहते थे, 'तुम्हारी पूजा में कोई त्रुटि की मैंने, कोई भी त्रुटि ?'

महानंद ने बाद में कहा था, "ठाकुर के क्रोध से ही उनकी यह हालत हुई। कोई त्रुटि ज़रूर हुई होगी। ठाकुर निर्दयी हैं। ग़लती हुई, शाप अब फलेगा।"

उसके बाद के वे भीषण दिन। दीनू को फाँसी लगने की ख़बर। तमाम ग्राम ठाकुर-वाड़ी के दालान में। ठाकुर-जेठा मंदिर में घुसे। पूजा की पोथी, पीतल की देव-मूर्ति को सिर पर उठाया। उसके बाद हाहाकार करते हुए बोले, "कितनी पीढ़ियों से तुम्हारी पूजा की, माँ! लेकिन तुमने मेरे लड़के की बलि ले ली। इस हाथ से अब तुम्हारी पूजा नहीं करूँगा।"

ठाकुर भुइयाँ-वाड़ी में नहीं थे। उस समय महानंद की भाभी को लड़की हुई थी। सूतक लगा था। मनसा अत्यन्त क्रुद्ध स्वभाव की देवी हैं। सो सूतक के कारण ठाकुर-वाड़ी में ही रहते तो ठीक था।

ठाकुर-जेठा बोले, "नहीं करूँगा पूजा।" और फिर सिर पर मूर्ति उठा कर चले भुइयाँ-वाड़ी की तरफ़। चीख़ रहे थे, "महानंद! महानंद!"

महानंद भागते हुए आये। देखा—सिर पर मूर्ति उठाये पुरोहित खड़े हैं। दीनू को फाँसी की ख़बर पाकर वे भी पीड़ित थे। अब पुरोहित को घर की चौखट पर खड़े देख कर चीख़े, "अशौच! महा अशौच! भगवान को भीतर मत लाइये।"

वे दीनू की बात भूल गये। तभी उन्हें ख़याल आया कि उनके घर जन्म का शौच है तो ठाकुर के घर मृत्यु का शौच है। उन्होंने मूर्ति छू कर सर्वनाश कर दिया है। मनसा को पवित्र नहीं रखा उन्होंने।

ये सारी बातें सोचते-न सोचते ठाकुर-जेठा भीतर घुस गये। दुलाली नहीं थी। दरवाज़े से लगकर खड़ी थी। सब देखा उसने।

ठाकुर-जेठा ने दालान में मूर्ति फेंक दी, पोथी भी। बोले, "घर लौटा दिया महानंद, भगवान लौटा दिया। मेरे लड़के को खा गये तुम, इस लड़की के द्वारा। तुम्हारे भगवान की पूजा मैं नहीं करूँगा। तुम्हारी ज़मीन पर भी नहीं रहूँगा। श्राप देता हूँ, निर्वंश हो जाओ, निर्वंश हो जाओ, निर्वंश हो जाओ!"

"वंश की मूर्ति तो आपने दालान में फेंक दी।"

"वंश के बड़े लड़के को डोम ने फाँसी नहीं दी क्या?"

"यह आप नहीं कर सकते।"

"कर तो दिया।"

"हमें पापी न बनायें, दादा! और ख़ुद भी पापी न बनें। भगवान

फेंक कर हम कहाँ जायेंगे ?"

"पाप में सब डूब गये, महानंद ! इस मूर्ति की पूजा करके अब तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकेगी।"

"दादा !"

"नहीं।"

पैर पकड़ते-पकड़ते वह निकल गये। महानंद हा-हा करते हुए दालान में रोते रहे। फिर घट-मनसा उठा कर बोले, "तुझे फेंक दिया, माँ...फेंक दिया !"

तभी उनकी दृष्टि पड़ी अपनी लड़की पर। "सर्वनाशी !" कहकर वे अचेत हो गये। बड़े लड़के श्यामानंद ने ठाकुर-घट और पोथी उठायी। भुइयाँ-बाड़ी की औरतें भी रोने लगीं। भीषण—भीषण सर्वनाश की स्मृति।

महानंद, ठाकुर-जेठा के पास जाते रहे। ठाकुर-जेठा उन्हें अपने यहाँ घुसने ही नहीं देते थे। उसके बाद पुलिस आयी। कर्णावती के सोते को पार करते ही, माँझीपाड़ा के लोगों ने देखा और वे घर छोड़कर जंगल में भाग गये। पुलिस के पीछे-पीछे आया हाथी। इस हाथी को पाटक के ज़मींदार लोग रैयतों के घर तोड़ने के काम में लाते थे।

पुलिस और हाथी सीधे ठाकुर-बाड़ी की तरफ़ आ रहे थे। असमर्थित रिपोर्ट है कि बदन ख़ाँ ने धीरे-से ठाकुर-बाड़ी की ओर इशारा किया और कर्णावती के टीले के ऊपर से भाग कर जंगल में घुस गया। पुलिस ने जब तांडव करना शुरू किया तो वह वहाँ से पाटक भाग गया। बदन ख़ाँ के पैर में उस समय नागरा जूते थे।

उसके बाद सभी को स्तम्भित करते हुए दरोग़ा ने दीनू की मूर्च्छित माँ को खींचकर बाहर निकाला। दो बरस की बहन को गोद में लिये दासी को भी पकड़ कर खींचा। दीनू के छोटे भाइयों को, ठाकुर-जेठा को खींच-खींच कर बाहर निकाला। ठाकुर-जेठा मुँह के बल गिरे। जब उठे तो ललाट पर रक्त की बूंदें थीं। गौर ललाट पर रक्त का टीका। गाँव के सभी लोगों को ठेलठाल कर महानंद दौड़े हुए आये।

ठाकुर-जेठा बोले, "दूर रहो ! छूना नहीं ! मैं अपवित्र हूँ।"

पत्नी को उठाया। फिर बच्चों और बूढ़ी दासी को उठाया। बोले, "कोई रोना नहीं। जो रोयेगा उसे काटकर फेंक दूँगा। देखने का समय है, देखते जाओ।"

प्रशिक्षित हाथी महावत के आदेश पर घर तोड़ता रहा। बाहर फेंक दिये गये बरतन, दरी, आलना, विस्तर, पानी, कुरसियाँ, भगवान की मूर्ति, सिंहासन, चावल का ड्रम और दाल-भरी कलसी।

महानंद दौड़े दारोग़ा की तरफ़। ठाकुर-जेठा बोले, "कुछ मत कहो। होने दो।"

फूस की छत में आग लगा दी गयी। धान के गोलाघर में भी। नया फूस और धान इस महासमारोह में जलते रहे। ग्रामीण अब शांत नहीं रह सके। "दोष किसका और दंड इसे!" कह कर विलाप करते रहे।

उसके बाद, ठाकुर-जेठा ने दारोग़ा के सामने सिर पटक दिया। बोले, "लड़का गया, घर गया। हमारे ऊपर भी दया करके हाथी चला दो, तुम्हारे पैर पड़ता हूँ।"

दरोग़ा जा रहा था। चलता जा रहा था। चेहरा घुमाकर बोला, "सरकार की नौकरी करता हूँ, मैला भी खाना पड़ता है। दोष न दीजिये।"

पेड़ के नीचे थे ठाकुर-जेठा। पत्थर की तरह खड़े थे। महानंद पैर पकड़ कर पड़ रहे। ब्राह्मण के पैर पर अपना सिर, अपना माथा घिसते रहे। बोले, "ठाकुर को ले लो, दादा! नया घर अभी बना देता हूँ। नयी ज़मीन देता हूँ। हमारा सर्वनाश हो जायेगा, दादा! पुजारी मूर्ति फेंक दे, यह अपशकुन है।"

"क्यों? वे मुझे फेंक सकती हैं, मैं नहीं? मेरे हृदय में जीतेजी चिता जला दी उसने। मैं उसे नहीं फेंक सकता क्या?"

"देवता तो निर्दोष को भी कष्ट देते हैं, फिर भी आदमी क्या देवता को फेंक देता है?"

"मैंने फेंका है, मैंने दिखा दिया है! मैं अब क्या ब्राह्मण रहा हूँ कि पूजा करूँगा? मेरे दीनू को डोम ने फाँसी दी है। डोम ने जलाया है उसे। अब हम ब्राह्मण कहाँ? तुम्हारे सामने पुलिस ने मेरी पत्नी के बदन पर हाथ

लगाया। मुझे खींच कर ज़मीन पर फेंक दिया। राधा-गोविन्द की मूर्ति हाथी के मूत में नहाती रही। उसके बाद ब्राह्मण क्या ब्राह्मण रहता है? बोलो...तुम ही कहो?"

"हमारा सर्वनाश हो जायेगा, दादा! पैर पकड़ता हूं, पग-धूलि चाटता हूं। दादा, मूर्ति को वापस लीजिये। हमें पापी न बनायें।"

ठाकुर-जेठा की आँखें आनन्द से नाच उठीं। वे जानते थे, मूर्ति न लेने पर ही महानंद के मन को सबसे बड़ी प्रताड़ना पहुँचेगी। वे धीर-गम्भीर, रुक्ष कंठ से बोले, "तुम्हारी लड़की अब तक बची है। महानंद, तुम्हें संतान-शोक नहीं हुआ है। तुम्हारा क्या सर्वनाश होगा, यही सोचते हो न? क्यों लूं मैं तुम्हारा भगवान? होने दो सर्वनाश, होने दो! इससे यदि तुम्हारा सर्वनाश होता है तो हो। मुझे तिल बराबर ही सही, पर शांति तो होगी ही। अपनी लड़की से तुमने हमारा इतना बड़ा सर्वनाश कराया है।"

सब याद है। सब याद रहेगा। ठाकुर-परिवार में दुलाली विष-रूपा थी। उसने दीनू को मार डाला। इस परिवार में भी दुलाली विष-तुल्य है, देव-रोष, ब्रह्म-कोप के कारण! इतने अरसे बाद आज सदानंद ने आकर सारी बातें जैसे एक बार फिर से याद करा दी हैं।

वेदी तैयार हुई। प्रशस्त, ऊंची। नीचे खोदकर लिखा गया—

"शहीद दीनदयाल ठाकुर"

(1900-1924)

"निःशेषे प्राण जे करि बे दान, क्षय नाई, तार क्षय नाई।"

इसमें 'जे करिबे' हो कि 'करिबे जे' लेकर काफ़ी विवाद हुआ। लेकिन कोई 'चयनिका' या 'संचयिता' सुलभ न होने के कारण इसकी जाँच नहीं की जा सकी।

वेदी बनी। उसके बाद थोड़ा अरसा चलने वाला कच्चा रास्ता। सदानंद ने नवीन से पूछा, "क्या यही तुम्हारा दीनदयाल रोड है?"

"नहीं। इससे जीप, ट्रक आयेंगे।"

"यही रास्ता दिखायेगी सरकार।"

"देखा जायेगा।"

"उसके बाद बिजली नहीं आयेगी ?"

"आ सकती है।"

"तुमसे ही गाँव का सर्वनाश होगा। तुम्हारी बुआ के कारण एक बार सर्वनाश हुआ था। अब तुम्हारे कारण होगा।"

"आप हैं, इसलिए छोड़ देता हूँ। आपके छोटे लड़के के मुँह से बुआ का नाम निकलता तो मुँह तोड़ देता।"

"नहीं, बाप का मुँह तोड़ो।"

"यह न सोचें कि इच्छा नहीं होती।"

ऐसी ही बातें नवीन आजकल बोला करता है। वैसे उसे ऐसी बातें कहने के लिए सदानंद 'प्रवोक' करता है। पिता एक 'सेडिस्ट' आनंद पाता है और पुत्र को ग्लानि-बोध होता है। यह सुनकर सदानंद अपने-आपको संभाल नहीं पाता। बोला, "ट्रक टूट जायेगा, नवीन ! उसकी मूर्ति गाँव तक नहीं आ पायेगी।"

"तो आप खुश हो लेना। लेकिन ऐसा होगा नहीं। पुलिस आ रही है मूर्ति लेकर। सावधानी से लायेगी, पहरा देगी।"

"पुलिस ?"

'निश्चय ही। मूर्ति का अनावरण मंत्री करेंगे।"

"पुलिस ! मंत्री ! पुरोहित का बेटा...ब्राह्मण...डकैती डाली, फाँसी चढ़ा। उसे लेकर इतना नाच !"

"आपके लिए यह रास्ता ज़रूरी है। रास्ता बन गया तो आपको दुनिया दिखा लाऊँगा। भुइयाँ राजा के राज के बाहर भी दुनिया है, देख लीजियेगा।"

"हाँ-हाँ, जानता हूँ। मानसिंह की तलवार और पट्टा कितनों के पास है !"

"कल-कारखाने हैं, धान की ज़मीन में गेहूँ होता है। डोम-चांडाल स्कूल-कॉलेज में पढ़ते हैं, देखने की चीज़ें और भी हैं। पट्टा और तलवार ? मेदिनीपुर में अगर ढूँढ़ा जाये तो आज भी कितनी ही तलवारें और पट्टे

मिल जायेंगे।"

बाप के सामने ही नवीन बुआ की कोठरी में चला गया। बाप को सुनाते हुए बोला, "मसूर की दाल और आलू-प्याज़ रख दो, बुआ ! चावल-दाल पका लो ! आज तुम्हारे घर में ही खाऊंगा।"

नवीन की माँ पीतल के घट के सामने रो पड़ी। सदानंद बोले, "तुम्हें फेंककर दीनू के बाप ने इतना अपमान किया। तुमने क्या इस कलियुग में अपनी क्षमता खो दी है ? दीनू की मूर्ति लगेगी गाँव में। तुम कुछ नहीं कर सकतीं ?"

पीतल की मनसा, ढाई सौ वर्ष से निस्पृह भाव से भक्तों की विनती सुन रही हैं। सुनती रहेंगी।

सदानद की प्रार्थना से कुछ नहीं हुआ। मूर्ति की स्थापना का दिन आ गया। उस दिन कच्चे रास्ते के दोनों तरफ़ छातिम और दूसरे सातों गाँवों के बाशिन्दे खड़े हो गये, लाइन बाँधकर। पी० डब्ल्यू० डी० के ट्रक आये। पुलिस के पहरे में, मृत्यु के चौवन वर्ष बाद, ब्रोंज़ के दीनदयाल ठाकुर घर लौटे। इतने साल तक विस्मृत, लेकिन पुनराविष्कृत शहीद को फाँसी की डोरी की तरह ही अनेक मज़बूत रस्सियों से उठाकर वेदी पर रखा गया।

पैर के नीचे के पाद-पीठ को वेदी के छेद में डालकर कंक्रीट से सुरक्षित किया गया। सदन खाँ द्वारा दी गयी स्कूल-मैगज़ीन की तसवीर विश्वस्त नहीं थी। फलतः दीनू के चेहरे में कई परिवर्तन आ गये थे। उद्धत, कठोर भाव और चमकती आँखें, शांत-गंभीर और उदासीन भाव में परिणत हो गये। बीच से माँग-कढ़े बाल, बदन पर कमीज़, धोती, कंधे पर दुशाला। दीनू की मूर्ति जैसे आश्वस्त हुई कि वह जिस गाँव को अंधकार-निमज्जित छोड़ गया था, वह वैसा ही अज्ञान-दारिद्रयपूर्ण है अब भी।

उसके बाद प्रतिमा को सेलोफ़ेन से ढंक दिया गया।

मशालें जलाकर पुलिस मूर्ति पर पहरा दे रही थी। उन्हें कड़े निर्देश दिये गये हैं। इसलिए वे वहीं खाना पकाते हैं और ड्यूटी बदलकर वहीं ट्रक में सो रहते हैं। दूसरे दिन दस बजते-न बजते सर्र से जीपें आनी शुरू हो गई। नवीन द्वारा लगाये पंचायती पैसे से एक बड़ा शामियाना ताना गया।

उसके नीचे एक बड़ी कुरसी पर बैठा था सदन ख़ाँ। शतरंजी भी बिछी थी। पाटक के स्कूल के लड़के-लड़कियाँ 'जनगन' गाने के लिए आये थे। रिपोर्टर, माइक, मूर्ति और मंत्री के लिए सारे आयोजन। पहनाने के लिए मालाएँ, अतिथियों के लिए मिठाई। कहीं कोई त्रुटि नहीं थी।

नवीन बोला, "चलोगी नहीं, बुआ?"

वह बोली, "नहीं बेटा, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ।"

"क्यों?"

"बाद में देख आऊँगी।"

"तुम रो रही हो?"

"रोऊँगी नहीं क्या? उस दिन सबों ने उसको पागल कुत्ते की तरह दुत्कार कर भगा दिया था...सिर फट गया था उसका...आज उसे ही तू इतना सम्मान...!"

नवीन चला गया। वह यह नहीं बता पाया कि इस सारे समारोह में उसकी भूमिका गौण है। आज का समारोह बाहर से नियंत्रित और संचालित हो रहा है। रिपोर्टर, सरकारी लोग—कोई उसे घास नहीं डाल रहा। एम०एल० ए० और मंत्री उससे बातें कर रहे थे, सिर्फ़ जन-सहयोग की ख़ातिर।

सबसे पहले शामियाने के नीचे भाषण हुए। नवीन ने गाँव की तरफ़ से मंत्री, सदन ख़ाँ और एम० एल० ए० का स्वागत किया और उन्हें स्थान ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया।

गान-मंडली शतरंजी के आगे खड़ी थी। बाक़ी ग्रामवासी शतरंजी के चारों तरफ़। एक उल्लेखनीय व्यक्ति अनुपस्थित था—सदानंद। रतन नाई की छोटी-सी आठ वर्ष की पुत्री मीरा ने, गुलाबी और सस्ते नाइलोन की फ्रॉक पहनकर, खूब चिकने बालों में रिबन बाँधकर, मंत्री जी को माल्यार्पण किया। सदन ख़ाँ ने एम० एल० ए०को हार पहनाया। सी पी० डब्ल्यू० डी० रोड्स के अफ़सरों के लिए मालाएँ कम पड़ गयीं।

इसके बाद मंत्री, एम०एल० ए० और सदन ख़ाँ ने दीनू ठाकुर के बारे में बड़े-बड़े भाषण दिये। नवीन से भी अनुरोध किया गया कि वह भी कुछ कहे। नवीन ने शुरू में लोगों का धन्यवाद किया और बोला, 'इसके

वाद, इनकी कृपा से हमारे गाँव के लिए रास्ता बनेगा---शहीद दीनदयाल ठाकुर रोड...।" सहसा एम० एल० ए० ने उसकी शर्ट पकड़ कर उसे खींचा। नवीन को खींचकर विठाने के वाद वे वोले, "सड़क-निर्माण का आग्रह हमारा भी है। लेकिन अभी सरकार काफ़ी मुसीवत में चल रही है। इसीलिए किसी तरह से अभी सड़क नहीं वनायी जा सकती। यहाँ सड़क वननी ज़रूरी है और इसलिए मैंने मंत्री महोदय के पास आवेदन भेजा है। भविष्य में किसी परियोजना के अन्तर्गत सड़क की वात ध्यान में रखी जायेगी।"

नवीन 'प्रोटोकोल' भूलकर चिल्ला उठा, "सड़क होगी...स्कूल होगा। हाट वनेगी, हेल्थ-सेंटर वनेगा—यह आपका वायदा था।"

"घोड़े के आगे गाड़ी मत जोतो, नवीन! सरकार को टिकने तो दो। सव-कुछ होगा।"

यहीं यह प्रमाणित हो गया कि नवीन गँवार है, गाँव का है। वह शहर की मिलिटेंट और तुरन्त वुद्धि में विश्वास नहीं करता। वह अचानक ही रो उठा। ग्रामीणों को लेकर उसने मंत्री को घेर लिया। "हमें सड़क वनाकर देनी ही होगी। हमारी माँग पूरी करनी होगी।" सिर्फ़ कहकर वात मनवाने की वात उसके मन में नहीं आयी।

शहर के मुरारी वावू और गाँव के रतन नाई ने उसके हाथ पकड़े और वोले, "नवीन, अभी का काम अभी होने दो। इतने आराम से कोई काम होता है क्या? करेंगे वे! देखा जायेगा। आज नहीं तो कल ज़रूर होगा।"

नवीन ने अपना हाथ छुड़ा लिया और मंत्री से वोला, "देखिये, दीनू ठाकुर जव गाँव छोड़ गये थे तो गाँव में स्कूल नहीं था, रास्ता नहीं था। हम मौया के तेल में वत्ती जलाते थे। आज भी गाँव में कुछ नहीं है। आज हम किरासिन जलाते हैं। एक भी रास्ता नहीं है। उसकी व्यवस्था अगर नहीं हुई तो...।"

"देखूँगा।"

सव उठ पड़े मूर्ति का अनावरण करने के लिए। जाते वक़्त मंत्री सदन खाँ से वोले, "सड़क की वात ठीक है। लेकिन यह वात तो

आपने...।"

सदन बोला, "यहाँ दीनू ठाकुर की मूर्ति होना ज्यादा ज़रूरी है। नहीं तो भूषन नहीं बोलता ?"

"हाँ, सो तो है। गाँव का शहीद। देश का गौरव। मूर्ति तो काफ़ी बड़ी बनी है।"

मंत्री वेदी पर चढ़े। अनावरण हुआ। फ़ोटो खींचे गये पटापट। तब हठात पाटक स्कूल के बच्चों ने गाना शुरू किया, 'जन गण मन...।"

नवीन चला गया नदी के सोते की तरफ़। आँसू थामे नहीं थम रहे। बच्चों की 'जय हे जय हे' उसे जैसे सलाख़ों से मार रही थी।

सारा दिन कट गया। सारे दिन वह बुआ के यहाँ सोता रहा। सारे दिन बुआ उसका बदन सहलाती रही, सांत्वना देती रही।

"तुम्हें लेकर शहर चला जाऊँगा। मुरारी बाबू ने कहा है कि प्रेस में ही रह लेना।"

"तेरी पंचायत ?"

"आकर काम करूँगा।"

"इसीलिए जा रहा है ?"

"तुम चलोगी न ?"

"जाऊँगी, तेरे साथ नहीं जाऊँगी क्या ?"

"यहाँ तुम अकेली आधा-पेट खाना खाती हो। वहाँ दोनों भरपेट खायेंगे।"

'ठीक है।"

"मुरारीबाबू कहते हैं कि वे बूढ़े हो चले हैं। अब सब संभाल नहीं सकते। मैं प्रेस देखूँगा। बहुत काम हैं। मैं काम करूँगा, वे कमीशन देंगे।"

"यही होगा। और तेरा बाप ?"

"इनका अन्न अब नहीं खाऊँगा।"

शाम हुई। नवीन ने देखा—बुआ उठी। साफ़ कपड़े पहने। बालों में कंघी कर रही है। बदन पर उसी की दी हुई चादर डाल रही है।

"क्या हुआ।"

"उठ।"

"क्यों ?"

"मैं एक बार देखूंगी नहीं ?"

"तुमसे मिलने की बात उन्होंने एक बार भी नहीं की।"

"तू भी तो है।"

"कितनी बातें कीं उन्होंने, वे क्या उन्हें जानते थे ?"

"वही तो कहते हैं रे ! तेरा बाप तुझे बुरा कहता है, वह क्या तुझे जानता है ?"

इस एक दिन में, इस एक बात में नवीन को जितनी शान्ति मिली वह मुरारी बाबू के सैकड़ों आश्वासनों से भी नहीं मिली थी। गांव के लोग उसे कहते हैं कि 'तुम्हारे कहने पर काम नहीं हुआ तो क्या हुआ ? तुम पर हमारा विश्वास ज्यों का त्यों है।' फिर भी नवीन शर्म से गड़ा जा रहा है। उनका प्रतिनिधि होकर भी वह कुछ नहीं कर पाया। उसने मन में प्रतिज्ञा की है—यदि मैं नवीन भुइयां हूं तो सड़क बनवाकर रहूंगा। फिर भी दुख, वेदना, मोहभंग की व्यथा कैसे जाये ?

नवीन ने टॉर्च उठायी। दोनों घर से बाहर निकले। मूर्ति के सामने आकर बुआ ठहर गयी। धीरे से सिर उठाया। नवीन ने टॉर्च जलायी।

"इतना...बड़ा ! इत...ना ऊंचा, नवीन ! आकाश दिखता है इसके पीछे से ?"

नवीन ने अब बुआ की आंखों से देखा। खूब बड़ी, खूब ऊंची। रात के अंधेरे में। ब्रोंज़ की मूर्ति की आंखों में वेदना और ममता।

"हमें देख रहे हो ! तू भी देख ले, नवीन !"

"हां।"

बुआ ने आंखें भर कर देखा। आगे बढ़ी। मूर्ति के पैर सहलाये। अद्भुत अबूझ अनुभूति। वह किसी भी तरह से इस मूर्ति को दीनू के शरीर और चेहरे से मिला नहीं पा रही है, क्यों ? दीनू क्या भगवान हो गया, मनसा-थान की तरह ?

"बुआ, ठंड लग रही है।"

"हां, चल।"

बुआ हठात रुकी। रुंधे गले से बोली, "पैर के पास पड़े फूल अभी से

सूख गये हैं, नवीन ! सिर पर कौवे हगेंगे। धूल-गर्द पड़ेगी। मनसा-थान की देवी की दुर्दशा तुमने नहीं देखी ?"

बुआ को आहिस्ते से खींचकर नवीन ने उसका हाथ पकड़ लिया। चलते-चलते बोला, "मूर्ति और रास्ते और फ़ंक्शन में चौहत्तर हज़ार आठ सौ एकावन रुपये खर्च हुए, बुआ ! इतने रुपयों में ग्राम को सोने में मढ़ा जा सकता था। रास्ता, हेल्थ-सेंटर, स्कूल—सब-कुछ बन जाता। अब तो आदमी बचकर भी मर...।"

उनके पीछे मूर्ति एक ममतामयी भंगिमा में खड़ी रही। वह दीनू नहीं, वह मात्र मूर्ति है। गढ़ने, स्थापित करने तथा विमोचन करने के बाद अब कुछ बाक़ी नहीं। इस मूर्ति के कारण नवीन का मोहभंग हो सकता था और हुआ भी।

नवीन और बुआ अँधेरे रास्ते पर चलते रहे।